Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द : आजादी का अरुणोदय

VIVEKANANDA : THE DAWN OF FREEDOM

सम्पादन - संयोजन
कनक तिवारी
राज्य समन्वयक

महात्मा गांधी १२५वाँ जन्मवर्ष समारोह समिति, म.प्र. का प्रकाशन
संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल - ४६२ ००३ (म.प्र.)
दूरभाष : ५७४४५८, ५५७०४० फैक्स ०७५५-५७५७३३

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

●

विवेकानन्द : आजादी का अरुणोदय

VIVEKANANDA : THE DAWN OF FREEDOM

●

सम्पादन-संयोजन
कनक तिवारी
राज्य समन्वयक,
महात्मा गांधी १२५वाँ जन्मवर्ष समारोह समिति,
मध्यप्रदेश

●

प्रकाशक
डॉ. अजीत रायज़ादा
प्रमुख सचिव, संस्कृति, म.प्र.

●

गांधी चेतना के प्रसार-प्रचार के लिए निःशुल्क वितरण हेतु।
पुस्तक में प्रकाशित लेखों में लेखकों के विचार अपने हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
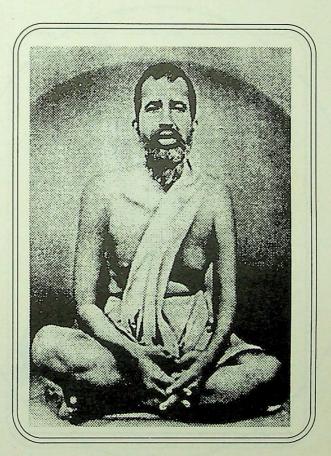
श्रीरामकृष्णदेव (१८३६-१८८६)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी विवेकानन्द जी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
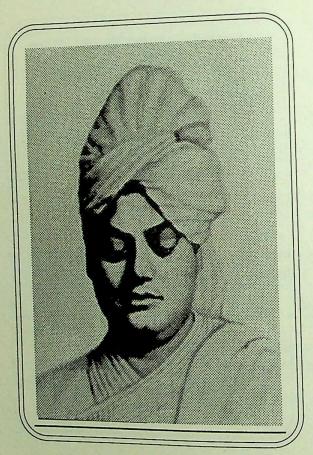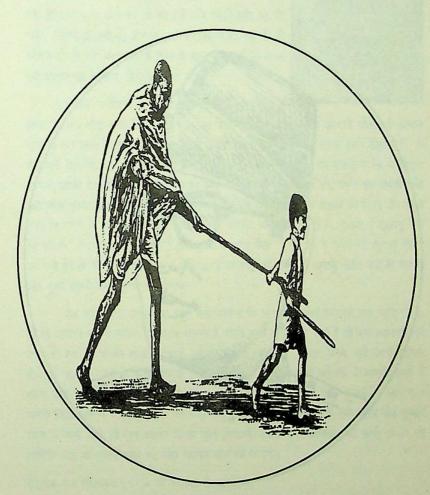
बालक तुलेन्द्र (स्वामी आत्मानन्द जी) गांधी जी की लाठी पकड़कर उनके आगे-आगे चलते हुए

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नेताजी सुभाषचंद्र बोस

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मिट्टी भी यहां से खुशबू लेकर जायेगी

जब आप किसी से मोहब्बत करते हैं, अल्लाह से मोहब्बत करते हैं, परमात्मा से मोहब्बत करते हैं तो फिर ये क्यों नहीं हो सकता कि अल्लाह को भी रखें और किसी और को भी रखें। मतलब तो वही है, रूप तो वही है, आत्मा तो वही है। मैं आपके सामने यही कहूंगा कि मैं दिल से बात कर रहा हूँ कि आप मुझे शुमार कर लीजिए, मैं एक मेम्बर रहूंगा।

क्योंकि ये मिशन अभी पूरा नहीं हुआ है। आपने देखा होगा कि एक दौड़ होती है जिसको रिले-रेस कहते हैं, उसमें पांच-छः आदमी दौड़ते हैं अपना फासला तय करने के बाद दूसरे आदमी को अपना झंडा देते हैं और वो लेकर आगे दौड़ता है। तो ये हमारी रिले-रेस है, जो अभी जारी है। हम तो इसके लिए यही दुआ कर सकते हैं कि ये मिशन आपको काफी देर चलाना है और ये मिशन अब करोड़ों तक नहीं अरबों तक पहुंचे हम समझेंगे कि कुछ काम हुआ। इसमें कोई शक नहीं, कहते हैं कि एक आदमी ने एक शख्स को मिट्टी दी। उसने देखा कि मिट्टी में खुशबू आ रही है। उसने मिट्टी से पूंछा कि तू तो मिट्टी है, तुम्हारे में खुशबू कैसे आ रही है, उसने कहा कि मैं बरसों तक फूलों के पास बैठी थी, तबसे ये फूलों की खुशबू मेरे में आ गयी है। तो जो भी इस परिवार में आयेगा, अगर मिट्टी भी होगी तो खुशबू लेकर यहां से जायेगी और दूसरे लोगों तक खुशबू पहुंचायेगी।

एक बहुत बड़ा काम, एक बहुत बड़ा मिशन जो आप, हम सब मिलकर अब चला रहे हैं, तो जो आदमी अपनी मंजिल की तरफ चलता है उसके साथ लोग जुड़ जाते हैं तो एक काफिला बन जाता है, एक कारवां बन जाता है हजारों, लाखों, करोड़ों लोग मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े उसमें शामिल होते हैं। महात्मा गांधी के जो विचार हैं इन पर जरा गौर करें। अगर मैं कहूँ कि मैं आपके रास्ते में कांटा बोना चाहता हूँ और आप उसका जवाब कांटों से दें तो वो सड़क कैसी बनेगी। न आप चल पायेंगे उसमें और न मैं चल पाऊंगा, तो इन्हीं महापुरुषों ने हमें सिखाया है कि सुनो अगर कोई तुम्हारे रास्ते में कांटे बोये तो तुम उसकी जगह फूल लगाओ। ताकि उस कम्बख्त को कभी अक्ल तो आयेगी और वो तुम्हारे फूल पर पांव रखकर चल तो पायेगा।

(दिनांक २० सितम्बर १९९७ को भोपाल में आयोजित
''बापू के शिष्य गुरुदेव'' विषयक संगोष्ठी में)

मोहम्मद शफी कुरैशी
राज्यपाल, मध्यप्रदेश एवं अध्यक्ष
महात्मा गांधी १२५वाँ जन्मवर्ष समारोह समिति, मध्यप्रदेश

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी जी के विचार हमारे लिए आवश्यक हैं

स्वामी विवेकानन्द जी एक सर्वश्रेष्ठ मनुष्य थे, जिन्होंने धर्म और धर्म की व्याख्या को जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया और धर्म की व्याख्या अपनी लेखनी के माध्यम से दी। आज सबसे बड़ी चुनौती इस देश को ऐसी विकृत धार्मिकता के लोगों से है और मैं समझता हूं कि स्वामी विवेकानन्द जी के विचार हम जब तक जन-जन तक नहीं पहुँचायेंगे, तब तक इस विकृत हिन्दू धर्म की व्याख्या को हम जन-जन तक नहीं पहुँचा पायेंगे। रामकृष्ण मिशन जैसे कर्मठ लोगों को आगे आना चाहिए। ऐसे समर्पित लोग, ऐसे निष्कपट और ऐसी निष्ठा के लोग ज्यादा से ज्यादा समाज में जब तक नहीं पैदा होंगे तब तक हम उस प्रकार का निर्माण नहीं कर सकते, जैसा होना चाहिए। हम किस प्रकार इससे हटकर देश के बारे में सोचें, समाज के बारे में सोचें उन शोषित-पीडित लोगों के बारे में सोचें और मैं यह समझता हूँ कि स्वामी विवेकानन्द जी ने जब यह बात कही है कि ''दरिद्रनारायण की सेवा ही परम धर्म है।'' इससे बड़ा दृष्टान्त और इससे, बड़ी बात धर्म के बारे में आपको समझने की जरूरत नहीं है, बड़े-बड़े ग्रंथ और पोथे पढ़ने की जरूरत नहीं है। जब तक हमारे समाज में लोग पीड़ित रहेंगे, शोषित रहेंगे, गरीब रहेंगे, अशिक्षित रहेंगे तब तक अपने आप को राष्ट्रद्रोही के रूप में मानना चाहिए, यह बात स्वामी विवेकानन्द जी ने अनेक बार कही है। मैं समझता हूँ आज यह चुनौती आप और हम सबके सामने है। मुझे उम्मीद है कि स्वामी जी के विचार स्वामी जी की लेखनी, आज के भारत के लिए न केवल सामयिक है अपितु आवश्यक है। मुझे उम्मीद है कि हम सब लोग मिलकर उनसे प्रेरणा लेते हुए ऐसे भारत का निर्माण करें, जिसमें हर व्यक्ति अपनी ईमानदारी निष्ठा के साथ काम करता रहे।

महात्मा गांधी एक सौ पच्चीसवां जन्म वर्ष समारोह समिति ने अपनी स्थापना के पहले ही तीन वर्षों में अपनी सार्थक सक्रियता से पूरे देश के सुविख्यात गांधीवादी चिन्तकों को मध्यप्रदेश से जोड़ पाने का तो काम किया ही है साथ-ही-साथ राष्ट्रीय स्तर पर अपनी गौरवशाली उपलब्धियों से एक सार्थक पहचान बनाई है। भारतीय आजादी के इस स्वर्ण-जयंती वर्ष में तथा रामकृष्ण मिशन की स्थापना के शताब्दी वर्ष और नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने जन्म शताब्दी वर्ष में समिति का यह एक महत्वपूर्ण सद्प्रयास है। मुझे आशा है कि यह समिति इसी ऊर्जा से आगे भी अपना अभियान जारी रखेगी। हमारी शुभकामनाएँ साथ हैं।

दिग्विजय सिंह
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश एवं उपाध्यक्ष
महात्मा गांधी १२५वाँ जन्मवर्ष समारोह समिति, मध्यप्रदेश

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राज्य समन्वयक की ओर से....

विवेकानन्द भारत के एक ऋषि, विचारक, सन्त और दार्शनिक थे। उनकी देशभक्ति अद्वितीय रही है, भारत की गुलामी से उन्हें गहरा आक्रोश था। यह विचित्र किंतु सत्य है कि जब वह शिकागो के धर्म-सम्मेलन में गये तो वहाँ वे धार्मिक कारणों से नहीं गये थे। हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अमरीका से वांछित सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से गये थे। यह काम उस समय अव्यावहारिक लगता था, परन्तु आने वाले इतिहास में सच हुआ। स्वामी विवेकानन्द हिमालय की कंदराओं में तपस्या करने वाले कोई पलायनवादी साधु भी नहीं थे। उन्हें भारत के ३३ करोड़ लोगों से, जिन्हें वह देवता की संज्ञा देते थे, बेसाख्ता मोहब्बत थी। यह विवेकानन्द थे जिन्होंने भारत में पिछड़ी जातियों के अर्थात् शूद्र-राज की ऐतिहासिक भविष्यवाणी की थी। धर्म और विज्ञान के समन्वय की बातें भी भारत की धरती पर सबसे पहले विवेकानन्द ने की थीं। वह भारत की आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ आर्थिक प्रगति भी चाहते थे। वह हिन्दुस्तान में जीने वाले करोड़ों इंसानों को कीड़े-मकोड़े नहीं समझते थे।

विवेकानन्द की शिक्षाओं में वीर और बहादुर बनना भी शामिल है। उन्होंने भारतीयों को इन शब्दों में ललकारा था, "हे वीर! निर्भीक बनो, साहस धारण करो! इस बात पर गर्व करो कि हम भारतीय हैं और गर्व के साथ कहो कि मैं भारतीय हूँ और हर भारतीय मेरा भाई है, बोलो ज्ञानहीन भारतीय, दरिद्र भारतीय, ब्राह्मण भारतीय, अछूत भारतीय मेरा भाई है। कहो प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। भारतीयता मेरा जीवन है। भारत के देवी-देवता मेरा ईश्वर है। भारतीय समाज मेरे बाल्यकाल का पालना है, मेरे यौवन का आनन्द उद्यान है, पवित्र स्वर्ग है और मेरी वृद्धावस्था की वाराणसी है। हे शक्ति की माँ! मेरी निर्बलता को दूर करो, मेरी पौरुषहीनता को हटा लो और मुझे मनुष्य बना दो।" महात्मा गांधी तो उनसे मिलने बेलूरमठ तक गये थे। लोकमान्य तिलक उनके साथ रहे हैं और स्वामी रामतीर्थ भी विवेकानन्द से प्रभावित थे। अरविन्द उनके महान् प्रशंसक थे। जवाहरलाल नेहरू ने "भारत की खोज" में विवेकानन्द की आसाधारण सराहना की है। सुभाषचन्द्र बोस उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि "विवेकानन्द में सब कुछ विधेयात्मक है, निषेधात्मक कुछ नहीं। यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो केवल विवेकानंद को पढ़ें।" राजगोपालाचारी ने तो यहाँ तक लिखा है कि "यदि स्वामी विवेकानन्द नहीं होते तो कोई भी हिन्दुत्व और भारत को बचा नहीं सकता था न ही भारत को आजाद करा सकता था।"

भारतीय आजादी के इस स्वर्ण-जयन्ती वर्ष में, श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना के शताब्दी वर्ष में तथा शस्य-श्यामला बंग-भूमि के राष्ट्र-गौरव नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जन्म-शताब्दी-वर्ष के अवसर पर रायपुर की माटी को कालजयी ख्याति दिलाने वाले अशेष भारत-सपूत स्वामी विवेकानन्द जी की स्मृति में समिति को यह वैचारिक-प्रस्तुति बड़ी समीचीन लगी और तत्परतापूर्वक कुछ चुनिन्दा सामग्री जुटाकर हम इसे पुस्तकाकार रूप में आपके हाथों में सौंप सके हैं। आशा है हमारा यह प्रयास अवश्य रुचिकर लगेगा।

कनक तिवारी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अनुक्रम

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रार्थना

हे देव! पूजित विश्व के अनुराग हो।
हो तोड़ते भवबन्धनों के रोग हो।
हे अमल! तुम स्वर्ग-आभा युक्त हो।
और सब 'गुण'-विकृतियों से मुक्त हो।
मन और वाणी के तुम्हीं आवास हो।
फिर न उनकी पहुँच के तुम पास हो।
चहुँ ओर फैली सहज निर्मल ज्योति हो।
है भर गया जिससे हृदय निर्भ्रान्त हो।
तुम जन-तमस-घन अन्ध करते दूर हो।
जात-भय-कुल त्याग से भरपूर हो।
है कर रहे जो भक्ति नित मद-शून्य हो।
क्यों प्रभु तुम्हारा नेह उन पर न्यून हो?
हो तुम्ही आश्रय-शरण भी
नेत्र पल पल झर रहे हैं
वन्दना हम कर रहे हैं।

● स्वामी विवेकानन्द की वाणी (चतुर्थ संस्करण)
रामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा प्रकाशित

अन्धविश्वास और धर्म

बिना सोचे-विचारे विश्वास करना तो आत्मा का पतन है। तुम नास्तिक भले ही हो जाओ, परन्तु बिना सोचे-विचारे किसी चीज में विश्वास न करो। तनकर खड़े हो जाओ, अन्धविश्वास छोड़कर तर्क करो। धर्म विश्वास की वस्तु नहीं, बल्कि होने व बनने की वस्तु है। यही धर्म है और यदि तुम इसका अनुभव कर लोगे तभी धार्मिक कहे जाओगे। इसके पहले तुम पशुओं से भिन्न नहीं हो।

-स्वामी विवेकानन्द

भारत-आह्वान

❒ स्वामी विवेकानन्द

ऐ भारत! भूलना नहीं कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं; भूलना नहीं कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; भूलना नहीं कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है; भूलना नहीं कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो; भूलना नहीं कि तुम्हारा समाज उस महामाया की छाया मात्र है; भूलना नहीं कि नीच, अज्ञानी, चमार और मेहतर तुम्हारे रक्त-मांस हैं, तुम्हारे भाई हैं। ऐ वीर साहस का अवलम्बन करो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी सब मेरे भाई हैं। तुम भी केवल कमर में वस्त्र लपेटकर गर्व से पुकारकर कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला है, मेरी जवानी की फुलवारी, मेरा पवित्र स्वर्ग और मेरे बुढ़ापे की काशी है। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा सर्वोच्च स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो- "हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो माँ, मुझे मनुष्य बना दो!"

● ऐ भारत! यही तेरे लिए भयानक खतरे की बात है-तुझमें पाश्चात्य जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती जा रही है कि भले-बुरे का निश्चय अब विचार-बुद्धि, शास्त्र या हिताहितज्ञान से नहीं किया जाता। गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा करें तथा जिसे चाहें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें तथा जिसे न चाहें, वही बुरा है! खेद है, इससे बढ़कर मूर्खता का परिचय भला और क्या होगा?

● यह सदैव ध्यान रखना कि दुनिया में ऐसा अन्य कोई देश नहीं है, जहाँ की संस्थाएँ अपने

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ध्येय और आदर्श में इस देश की संस्थाओं से सचमुच अच्छी हों। मैंने संसार के प्रायः सभी देशों में जातिप्रथा देखी है, पर कहीं भी उसकी पृष्ठभूमि और उसके उद्देश्य इतने महान् नहीं हैं, जितने कि यहाँ। यदि सचमुच जातिप्रथा अनिवार्य हो, तो मैं तो 'डालर' पर आधारित जाति के बदले पवित्रता करूँगा और आत्म-त्याग पर आधारित जाति को ही पसन्द करूँगा। अतएव मुख से कोई निन्दा के शब्द न निकालो। मुँह बन्द कर लो और खोल दो हृदय के कपाट। इस देश की और संसार की मुक्ति के लिए जी-जान से जुट जाओ-तुममें से प्रत्येक, यह भावना रखते हुए कि उसी के कन्धों पर यह सारा भार है। वेदान्त के प्रकाश को- वेदान्त के जीवनदायी तत्वों को द्वार-द्वार पर ले जाओ और प्रत्येक आत्मा में हित ब्रह्मभाव को उद्‌बुद्ध कर दो। फिर तुम्हारी सफलता की मात्रा चाहे जितनी हो, पर तुम्हारे हृदय में यह सन्तोष बना रहेगा कि तुम एक महान् आदर्श को लेकर रहे, उसके लिए प्राणार्पण से चेष्टा की और अपने जीवन की बलि दे दी। इस आदर्श की पूर्णता में ही-फिर वह चाहे जिस प्रकार साधित हो-सारी मानवजाति का ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण केन्द्रित है।

● भारत को समाजवाद विषयक अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित करने के पहले यह आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाए। सर्वप्रथम, हमारे उपनिषदों, पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य निहित हैं, उन्हें इन सब ग्रन्थों के पृष्ठों से बाहर लाकर, मठों की चहारदीवारियाँ भेदकर, वनों की नीरवता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर देश में सर्वत्र बिखेर देना होगा, ताकि ये सत्य दावानल के समान सारे देश को चारों ओर से लपेट लें-उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जाएँ-हिमालय से कन्याकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र वे धधक उठें।

● क्या भारत मृत्यु को प्राप्त होगा? तब तो दुनिया से सारी आध्यात्मिकता तली में चली जाएगी; सारी नैतिक पूर्णता नष्ट हो जाएगी; धर्म के प्रति सारी मधुर सहानुभूति लुप्त हो जाएगी, आदर्श के प्रति सारा प्रेम गायब हो जाएगा; और उसके स्थान पर विलासिता और कामरूपी देवी-देवता आधिपत्य कर लेंगे, जहाँ धन पुरोहित होगा, छल-कपट, जोर-जबरदस्ती और प्रतियोगिता उसके विधि-अनुष्ठान होंगे और मानवात्मा उसकी बलि होगी। पर ऐसा कभी नहीं हो सकता। कष्ट

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सहने की शक्ति, कार्य करने की शक्ति की अपेक्षा अनन्तगुनी श्रेष्ठ है। प्रेम की शक्ति, घृणा की शक्ति की अपेक्षा अनन्तगुनी अधिक प्रभावशाली है।

- प्रत्येक अव्यक्त ब्रह्म है।

- बाह्य एवं आन्तर प्रकृति को वशीभूत करके इस अन्तःस्थ ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

- कर्म,उपासना,मनःसंयम अथवा ज्ञान-इनमें से एक, एक से अधिक,या अधिक,या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।

- बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठानपद्धति, शास्त्र,मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रियाकलाप तो उसके गौण अंग-प्रत्यंग मात्र हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी विवेकानन्द और वर्तमान भारत

❑ श्री दिग्विजय सिंह
माननीय मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

आज के भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हर स्तर में चारित्रिक अवमूल्यन हो रहा है। आप किसी क्षेत्र की बात करिए, किसी संस्था की बात करिए, स्तर हमारा गिरता जा रहा है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम उन मान्यताओं को, उन परम्पराओं को, उन विचारों को फिर से जागृत करें, जिनके लिए भारत जाना जाता था, जिन पर भारत गर्व करता था। आज के नौजवान के पास समय नहीं है। उसके पास सबके लिए समय है, काम करने के लिए समय है लेकिन अच्छे लोगों के सम्पर्क और संगत में आने के लिए उसके पास समय नहीं है।

आज जब चारों तरफ अंधकार है यहाँ दीप प्रज्ज्वलित है और इसीलिए मैं हमेशा इस बात को कहता रहा हूँ कि आज संस्थाओं को और संस्थाओं में भी रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं को हम जितना काम सौंपे, उतना कम है। अभी जब मैं आ रहा था छोटे-छोटे बालक लाइन में लगे खड़े थे। ये वो बालक जो कि आस-पास के मोहल्लों में रहते हुए आश्रम में थोड़ा समय बिताने के लिए आते हैं, उन बच्चों के चेहरे पर चमक, बच्चों के चेहरे पर सम्मान-आदर का भाव, ये बात दर्शाता था कि यही बालक यदि इस रामकृष्ण मिशन के प्रांगण में नहीं आते तो न जाने इन गली, कूचों और मोहल्लों में क्या करते होते? आज ऐसे प्रांगण हर नगर, हर गांव, हर शहर में हों तो अपने आप जो चारित्रिक अवमूल्यन अपने समाज में आज पैदा हुआ है उसे दूर किया जा सकता है।

मैं सन् ८६ में नारायणपुर गया था स्वर्गीय स्वामी आत्मानन्दजी के साथ। मैं समझता हूँ वो क्षण मेरे जीवन के बहुत महत्वपूर्ण क्षण थे। अबूझमाड़ के उन दूर-दराज रहने वाले आदिवासियों के मन में उन्होंने विश्वास पैदा किया। उनकी संस्था जो आज तैयार हो आज फलफूल रही है और वही बच्चे जो कि जिनके पिता, जिनकी माता उन्हें अपने घर से बाहर निकलकर किसी स्कूल में भेजने

के लिए तैयार नहीं थे, जो तन पर कपड़ा भी नहीं पहन कर शिक्षा से काफी दूर थे, वे ही बालक छः महीने के अन्दर वेदों के पाठ का उच्चारण कर रहे थे, और शुद्ध उच्चारण कर रहे थे। शायद हम लोगों में से कई ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको उन वेदों का पाठ करने के लिए कहा जाए तो उस तरह उच्चारण हम लोग नहीं कर पाते। लेकिन उन छोटे-छोटे अबूझमाड़ निवासियों के बालकों को छः महीने के अन्दर इन समर्पित स्वामियों ने इस प्रकार का ढाला कि उनमें वो भावना जागृत हुई, और मुझे इस बात की प्रसन्नता है, वो बैच जो सन् ८५-८६ में भर्ती हुआ था, मुझे बताया गाया कि पिछले साल १०वीं कक्षा में वो पास हुए हैं और अच्छे नम्बरों से पास हुए हैं।

मैं इस बात से पूरी तरह से आश्वस्त हूँ कि जिन आदिवासी बच्चों ने रामकृष्ण मिशन में पढ़ा हो, नारायणपुर की संस्था में पढ़ा होगा, निश्चित रूप से कहीं भी शासकीय स्कूल के विद्यार्थियों से कहीं बेहतर निकलेंगे, क्योंकि उन्होंने न केवल शिक्षा का ज्ञान लिया है, बल्कि संस्कार उनके जागृत हुए हैं और आज जो संस्कारविहीन समाज, जो देश में आज बदलता जा रहा है यही सबसे बड़ी चुनौती, एक सबसे बड़ी कमजोरी है। आज संस्कार ढूंढने को नहीं मिलते। आज सुसंस्कृत परिवारों में भी संस्कारों की कमी आती जा रही है ये सबसे बड़ी चुनौती मैं मानता हूँ। हमारा शिक्षा विज्ञान तो बढ़ा हर प्रकार के टेक्नॉलाजी, साईंज के बारे में जानकारी मिली। बच्चों को नये-नये पाठ्यक्रम दिए गए। लेकिन जो बच्चों में स्कूलों के माध्यम से, उनके शिक्षकों के माध्यम से, उनके गुरुजनों के माध्यम से जो भारतीय संस्कृति के संस्कार बच्चों में पैदा करना चाहिए वो कहीं शासकीय शाला में हमें देखने को नहीं मिलते। क्योंकि हमारे पास समय नहीं है। हमारे पास हर किसी के लिए समय है लेकिन हमारे ही लोगों को, हमारे बच्चों को, परिवार के लोगों में संस्कार जागृत करने का हमारे पास समय नहीं है।

आज जो यह प्रयास किया जा रहा है कि स्वामी विवेकानन्द एक शुद्ध हिन्दू नेता थे, जो ये प्रचारित कर रहे हैं वे सबसे बड़ा अन्याय स्वामी विवेकानन्दजी के साथ करते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी कोई हिन्दूवादी नेता नहीं थे। वह तो एक सर्वश्रेष्ठ मनुष्य थे, जिन्होंने धर्म को और धर्म की व्याख्या जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया और धर्म की व्याख्या अपने लेखनी के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

माध्यम से दी। आज यदि हमारे नौजवानों में और हमारे समाज के उन पढ़े-लिखे लोगों में जो धर्मान्धता का जहर घोला जा रहा है, आज जिस प्रकार से हिन्दू धर्म को विकृत करने की कोशिश की जा रही है यह हमारी दूसरी बड़ी चुनौती है। वही लोग जो अपने आपको सबसे बड़ा धार्मिक मानते है, जो मंदिर का अहम मुद्दा मानकर सब कुछ करने के लिए तैयार हो जाते हैं। आज सबसे बड़ी चुनौती इस देश को ऐसी ही विकृत धार्मिकता के लोगों से है और मैं समझता हूँ कि यह स्वामी विवेकानन्द जी की लेखनी उनके विचार, जब तक हम जन-जन तक नहीं पहुंचायेंगे, तब तक हम इस विकृत हिन्दू धर्म की व्याख्या को हम जन-जन तक नहीं पायेंगे।

आज की आवश्यकता है कि हम स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों को शिक्षा के माध्यम से पाठ्य पुस्तकों में डालें। भाई कनक तिवारी जी ने जो बात कही है, मैं अभी स्वामी जी से चर्चा कर रहा था और शासन की ओर से हम यह जवाबदारी स्वामी जी को ही देंगे कि वे विवेकानन्द जी के साहित्य में से वो भाग जो बच्चों को पढ़ना चाहिए, मॉरल साइंस, चरित्र निर्माण के बारे में हम चाहेंगे कि वे सारे उद्धरणों का लेखा-जोखा तैयार कर बतायें कि, किस प्रकार पाठ्यक्रमों में इन्हें शामिल किया जा सकता है। उसके लिये मैं उन्हीं से निवेदन करूंगा कि वे हमारी मदद करें और आगामी वर्ष के पाठ्यक्रमों से हम चाहेंगे कि स्वामी विवेकानन्द के विचार हमारे शासकीय स्कूलों में बच्चों को पढ़ाये जायें। मैं हमेशा इस बात को कहता रहा हूँ कि हम चाहते हैं कि स्वायत्त संस्थाएँ समाने आयें। शासन पर यह जवाबदारी, हर किस्म की जवाबदारी छोड़ने की जो प्रवृत्ति है, मैं इसके सख्त खिलाफ हूँ। एक बहुत दिनों से प्रक्रिया चलती रही, कि संस्था खोलो, चल रही है तो चल रही है, नहीं चल रही है तो शासन को सौंप दो। मैं इसके सख्त खिलाफ हूँ। हमने यह तय किया है कि हम कोई शासकीय संस्था का शासकीयकरण नहीं करना चाहते। हम तो चाहते हैं कि जो शासकीय संस्थायें चल रही हैं, उनका निजीकरण हो, और हम चाहते हैं कि रामकृष्ण मिशन जैसे कर्मठ लोगों को इसमें आगे आना चाहिए ताकि तय हो सके कि, शासकीय संस्थाओं में किस प्रकार से सुधार लाया जाये।हम चाहते हैं कि ऐसे समर्पित लोग, ऐसे निष्कपट और ऐसी निष्ठा के लोग ज्यादा से ज्यादा समाज में जब तक पैदा नहीं होंगे, जब तक ज्यादा से ज्यादा आगे नहीं आयेंगे, तब तक संस्थाओं को हम

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उस प्रकार से निर्माण नहीं कर सकते, जैसा होना चाहिये। आज क्यों बच्चे हम शासकीय शाला में नहीं भेजते? अगर हमारे पास पैसा खर्च करने के लिए है, तो हम कभी शासकीय शाला में नहीं भेजेंगे। अगर हमारे पास पैसा है, हम हमारे किसी भी व्यक्ति को सरकारी अस्पताल में इलाज के लिए नहीं भेजेंगे, कारण यही है, कारण एकमात्र यही है कि जो लगन्, निष्ठा और जो समर्पित भावना आनी चाहिए हमारे समाज में, आज उससे हम पूरी तरह से वंचित हैं। केवल किस प्रकार दिन काटें, और दिन काट कर ज्यादा से ज्यादा चारों तरफ से बटोर सकें, यही हमारा जीवन का लक्ष्य बन चुका है, यही हमारा धर्म बन चुका है। हम किस प्रकार इससे अलग हटकर देश के बारे में सोचें, समाज के बारे में सोचें, उन शोषित पीड़ित लोगों में सोचें और मैं समझता हूँ कि स्वामी विवेकानन्द जी ने जब यह बात कही है कि "दरिद्रनारायण की सेवा ही परम धर्म है," इससे बड़ा दृष्टान्त और इससे बड़ी बात आपको धर्म के बारे में समझने की जरुरत नहीं है, बड़े-बड़े ग्रन्थ और पोथे पढ़ने की जरुरत नहीं है। सबसे बड़ा जो उनका उपदेश रहा है कि जब तक हमारे समाज में, लोग पीड़ित रहेंगे, शोषित रहेंगे, गरीब रहेंगे, अशिक्षित रहेंगे, तब तक हमें अपने आप को राष्ट्रद्रोही के रूप में मानना चाहिये। यह बात स्वामी विवेकानन्द जी ने अनेक बार कही है। मैं समझता हूँ कि आज यह चुनौती आप और हम सबके सामने है। आप किसी क्षेत्र में काम करते हों, आप किसी स्थान पर काम करते हों, सत्यता, निष्ठा, ईमानदारी ये मानक बड़े कठिन हैं, विशेषकर आज के युग में जबकि आस-पड़ोस के मोहल्ले में आप देखेंगे कि जो तिकड़मी हैं वो सबसे आगे हैं, जो सबसे सीधा ईमानदार है, वो लाइन में ही खड़ा रहेगा रौब जमाने वाले आयेंगे और सामने निकलकर अपना काम कराके चले जायेंगे।

आज जागृति पैदा करना, ऐसे लोगों को समझाइश देना, उन्हें मजबूर करना, कि आखिर लाइन में यदि कोई व्यक्ति खड़ा है, तो जब तक उसका नम्बर न आये, वह आगे न बढ़े। यह छोटी-छोटी घटनायें हैं लेकिन इस पर आम आदमी का विचार, आम आदमी का चरित्र यह सब परिलक्षित होता है। मैं बहुत बड़ी-बड़ी बात तो कर रहा हूँ, लेकिन जिस क्षेत्र मैं काम करता हूँ, उसी क्षेत्र में जो हालात है, आपके सामने हैं। शुरूआत कहाँ से करें यह समझ में नहीं आता। लेकिन मैं आपसे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अनुरोध करता हूँ कि, हमारे स्वामी जी से अनुरोध करता हूँ, कि आप अपनी संस्थायें जितनी हैं उतनी ही रखें, समय-समय पर सात दिन का, दस दिन का, पन्द्रह दिन का और सौ दिन का उन नौजवानों के लिये पाठ्यक्रम प्रारम्भ करें। कुछ उनके मन में एक निष्ठा, ईमानदारी, लगन, चारित्रिक उत्थान के बारे में उन्हें प्रेरित करें, प्रेरणा दें ताकि हम सब मिल कर भारत के एक सच्चे सपूत के नाते हमारे गिरते हुए स्तरों को उठाने का प्रयास करें, और मुझे उम्मीद है कि स्वामी विवेकानन्द जी के विचार, स्वामी विवेकानन्द जी की लेखनी, आज के भारत के लिए न केवल सामयिक है किन्तु आवश्यक है। मुझे उम्मीद है कि हम सब लोग मिलकर उनसे प्रेरणा लेते हुए एक ऐसे भारत का निर्माण करेंगे, जिसमें हर व्यक्ति अपनी ईमानदारी, निष्ठा के साथ काम करता रहे और जो एक दूसरे के सर पर बैठकर, कुचलकर आगे बढ़ने का जो हम प्रयास करते हैं जिस प्रकार का चारित्रिक अवमूल्यन हमारे हर क्षेत्र में हुआ है, उसे हम दूर करने का प्रयास करेंगे।

(विवेकानन्द आश्रम, रामकृष्ण मिशन, रायपुर में
११ सितम्बर १९९४ को दिया गया भाषण)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द

कुछ शब्द-चित्र स्मृति में उभरते हैं

❑ कनक तिवारी

पहला शब्द-चित्र

एक तीस वर्ष का युवा संन्यासी अपनी जननी माता से अनुमति माँगाता है कि माँ मुझे अपने देश और धर्म का प्रचार करने के लिए विदेशों में जाना है। उसकी आकांक्षाओं और महत्वाकांक्षाओं से जानबूझकर बेखबर रसोईघर में काम कर रही माँ उससे कहती है "जरा वो चाकू उठाकर दे दो।" युवा संन्यासी चाकू के लोहे का फल अपने हाथों में पकड़ कर लकड़ी का मूठ माँ की तरफ कर देता है। माँ का आशीर्वाद गूँजता है, "जाओ तुम्हारी यात्रा शुभ हो। तुम्हें चाकू किस तरह उठाकर दिया जाता है इसकी तमीज तो है, तुमसे किसी का अहित नहीं होगा।"

दूसरा शब्द-चित्र

११ सितम्बर १८९३ को शिकागो की धर्म संसद में आर्ट इंस्टीट्यूट के विशाल सभाकक्ष में विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधि हिन्दू, जैन, बौद्ध, ईसाई, कन्फ्यूसियस, ताओ, इस्लाम आदि के आचार्य अपने लिखित भाषणों के साथ उपस्थित हैं। उसके बीच हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे.एच. राइट की कृपा से किसी तरह प्रवेश कर सका भारत का वही तीस वर्षीय युवा संन्यासी है जो किसी धर्म, मजहब या संगठन के प्रतिनिधि के रूप में नहीं बल्कि भारत के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ उपस्थित है। सुबह का सत्र गुजरता चला जाता है और सभापति के बार-बार आग्रह के बावजूद भाषण देने का साहस तक वह नहीं जुटा पाता है। अन्ततः सन्ध्या के सत्र में एक फ्रांसीसी पादरी के अनुरोध पर भाषण देने खड़ा होता है। हृष्ट-पुष्ट देह, आत्मिक तेज से दमदमाता चेहरा लिये यह गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी अपनी कालजयी वाणी में केवल इतना कहता है "अमरीकावासी बहनों और भाइयों!" इतना सुनते ही विशाल सभाकक्ष में तुमुल हर्ष-ध्वनि के साथ अन्तहीन तालियाँ बजने

का सिलसिला शुरू होता है जो शायद तब तक कायम रहेगा जब कि आदमी के जेहन में शिकागो धर्म संसद की याद बाकी रहेगी। पहली बार अमरीका के समृद्ध देश के लोगों को ऐसा लगा कि उनकी दुनिया के बाहर भी कोई दुनिया है जहाँ उनके भाई-बहन रहते हैं। कोलम्बस द्वारा अमरीका को खोजे जाने की ४०० सालाना जयन्ती के अवसर पर आयोजित इस समारोह में, कोलम्बस ने तो भूगोल की सरहदें तोड़ी थी, परन्तु इस संन्यासी ने इतिहास की परतों को चीर कर इस तरह फेंक दिया जैसे वे प्याज के छिलके हों और अन्त में यही साबित किया कि दुनिया के सभी धर्मों का केवल एक उद्देश्य है "सत्य की स्थापना" और यही भारत के वेदान्तिक विचारकों का अन्तिम लक्ष्य रहा है। इसके बाद अमरीका की धरती पर उस सन्यासी के भाषणों का सिलसिला शुरू हुआ। अमरीका और पूरी दुनिया को ऐसा लगा कि जैसे पुराण के पन्नों में जान पड़ गई हो, लगा कि जैसे भारत के विद्रोही सन्तों की आत्मा का स्वर इस युवा संन्यासी के कंठ की परतों को चीर कर समा गया हो। लगा कि जैसे दुर्गा सप्तशती की विद्रोहिणी भाषा हमारी शताब्दी का इतिहास बदलने को गरज उठी है। यह बोली केवल विवेकानन्द की बोली नहीं थी। यह बोली उनके गुरु परमसिद्ध श्रीरामकृष्णदेव की शिक्षाओ का सार थी। यह बोली भारत की बोली थी। यह बोली भारत-इतिहास और उसकी समन्वयवादी संस्कृति और उसकी एक विश्ववाद की पैरवी की बोली थी।

तीसरा शब्द-चित्र

धर्म संसद में अपनी ऐतिहासिक सफलता के बाद शिकागो के लगभग सबसे बड़े अमीर व्यक्ति के घर में पांच सितारा संस्कृति की तामझाम से लैस कमरे में नर्म गुदगुदे बिस्तर पर लेटे इस युवा संन्यासी के मन में भारी उथल-पुथल जारी है। यह युवा विचारक रात भर सो नहीं पाया। आँसुओं से उसका तकिया भीग गया। मर्मान्तक पीड़ा से बेचैन वह धरती पर यानी अपनी माँ की गोद में लेटकर चीखने लगता है... "ओह माँ! नाम और प्रसिद्धि लेकर मैं क्या करूँगा जब मेरी मातृभूमि अत्यंत गरीब है। कौन भारत के गरीबों को उठायेगा? कौन उन्हें रोटी देगा? हाँ माँ! मुझे रास्ता दिखाओ, मैं कैसे उनकी सहायता करूँ?"

चौथा शब्द-चित्र

यह भी सामान्य दिन है। आज अलसुबह इस संन्यासी ने सदैव की तरह तीन घण्टे ध्यान किया। आश्रम में सदैव की भांति चहलकदमी की। अन्य संन्यासी साथियों के साथ आज भोजन किया। अगले दिन काली-पूजा करने के सम्बन्ध में निर्देश जारी किये। शुक्ल-यजुर्वेद के एक कठिन श्लोक की रसमयी व्याख्या की। लगातार तीन घण्टे तक ब्रह्मचारियों को पाणिनि की व्याकरण पढ़ाई। स्वामी प्रेमानन्द के साथ संध्या-भ्रमण किया और उन्हें एक वैदिक महाविद्यालय खोलने के सम्बन्ध में निर्देश दिये जो सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों के खिलाफ लड़ाई करें। आश्रम के संन्यासियों से थोड़ी बहुत बातचीत की और शाम को अपने कक्ष में जाकर ध्यानमग्न यह संन्यासी ऐसी समाधि में प्रवेश कर गया जहाँ से भौतिक रूप से वापस आना सम्भव नहीं होता। उसे महासमाधि कहते हैं।

विवेकानन्द के जीवन के ये शब्द-चित्र नये भारत के इतिहास के ताजे दहकते दस्तावेज हैं। ये क्रान्ति के वे स्फुलिंग हैं जिन्होंने उनकी कुर्बानी की बलिवेदी पर बीसवीं सदी के भारत के स्वाभिमान को जिन्दा रखा है। शिकागो की धर्म संसद में विवेकानन्द के शब्द किसी मानव-ज्वालामुखी के मुँह से निकला वह लावा है जिसके ठंडे होने पर अमरीका की छाती पर भारत के अध्यात्म का झण्डा किसी दुश्मनी या विजय की भावना से नहीं बल्कि विश्व-बन्धुत्व और समानता के आधार पर गाड़ दिया गया था। विवेकानन्द ने हमको आँधियों से निकाला। वे समकालीन भारत के सभी उपेक्षित प्रश्नों के अनाथालय थे। उनका जीवन इस देश के निवासियों के लिए कुतुबनुमा की सुई की तरह घूमता था। वे जिस दिशा की ओर जाते थे वहाँ उत्तर होता था, प्रश्न मौन हो जाते थे। विवेकानन्द अपनी पीढ़ी के, बल्कि भारत की सभी पीढ़ियों के महानतम प्रज्ञा-पुरुष थे। विवेकानन्द भारत के पहले धार्मिक सांस्कृतिक राजदूत थे, जिन्होंने सभी तरह की कुंठाओं और वर्जनाओं को छोड़ कर पश्चिम में बुद्धिजीवियों को उनकी ही धरती पर निर्णयात्मक रूप से पराजित किया था। उनके कहे गये शब्दों, लिखे गये लेखों और गायी हुई कविताओं के मूल्य आज भी हमारे लिए अक्षुण्ण हैं। उनकी प्रासंगिकता आज भी बरकरार है। भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक जीवन का ऐसा कोई महारथी नहीं है जो उनके जीवन से अनुप्राणित नहीं हुआ हो। विवेकानन्द,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मैजिनी, विस्मार्क या लेनिन की तरह महान् देशभक्त थे। उनमें स्पिनोजा तथा प्लोटिनस की तरह रहस्यात्मक अनुभूति थी। अद्वैत वेदान्त के अद्वितीय आचार्य होने के बावजूद उनमें माधवाचार्य और वल्लभाचार्य की तरह धार्मिक भावना की प्रधानता थी। एनसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के २० में से ११ खण्डों पर उनका असाधारण अधिकार था। स्वामी विवेकानन्द ने पतंजलि के प्रकृतियोग के सिद्धान्त का पूरक सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। वह ऋग्वेद से लेकर कालिदास तक भारत के अन्यतम ग्रन्थों के गुह्यतम रहस्यों से परिचित थे। विवेकानन्द ने कांट, शापेनहावर, मिल तथा स्पेन्सर का अध्ययन किया था। विलियम जैम्स ने कहा था कि विवेकानन्द ने दुनिया के मनोवैज्ञानिकों में अतिचेतना धारणा का समावेश किया है। पश्चिम ने उन्हें "हिन्दू-नेपोलियन" और "चक्रवातिक हिन्दू" की संज्ञाएँ दी थीं। भारत के इतिहास में १८६० से १८७० का दशक एक महान् दशक रहा है जिसके गर्भ से ज्ञान की गंगा के प्रतिनिधि धार्मिक विवेकानन्द, कर्म की यमुना के राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि मोहनदास करमचन्द गांधी और साहित्य की सरस्वती के अध्येता रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जन्म लिया है। इनमें से विवेकानन्द ने भारतीय जीवन पर जितना प्रभाव डाला है उसका कोई समानान्तर नहीं है।

विवेकानन्द के दर्शन के तीन मुख्य स्रोत रहे हैं। प्रथम वेदों तथा वेदान्त की महान् परम्परा, दूसरा उनका श्री रामकृष्णदेव के साथ सम्पर्क और तीसरा उनका अपने जीवन का अनुभव। वे उस अर्थ में राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे जिस अर्थ में होब्स, रूसो, ग्रीन तथा बोसाका को हम समझते हैं परन्तु भारत के राजनीतिक जीवन पर उनका असर असाधारण था।

विवेकानन्द भारत के पहले ऋषि, विचारक, सन्त और दार्शनिक थे जिन्होंने इतिहास की समाजशास्त्रीय व्यास्था की थी। उन्हें केवल अपने हिन्दू होने पर कोई गर्व नहीं हुआ। अपनी मातृभूमि से असाधारण प्रेम होने के बावजूद विवेकानन्द मानवता के इतिहास में केवल एक भारतीय के रूप में याद नहीं किये जायेंगे। उनकी देशभक्ति अद्वितीय रही है, भारत की गुलामी से उन्हें गहरा आक्रोश था। यह विचित्र किन्तु सत्य है कि जब वह शिकागो के धर्म-सम्मेलन में गये तो वहाँ वे धार्मिक कारणों से नहीं गये थे। हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अमरीका से वांछित सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से गये थे। यह काम उस समय अव्यावहारिक लगता था परन्तु आने वाले

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इतिहास में सच हुआ। जब वह अमरीका गये तब तक वहाँ वे भीड़ में भटकी हुई एक गुमनाम इकाई से ज्यादा कुछ नहीं थे। वहाँ पर उन्हें भूखा अपमानित और उपेक्षित भी रहना पड़ा। धर्म-संसद में उनकी सफलता से ईर्ष्या करने वालों ने उनकी चरित्र-हत्या तक का प्रयास किया किन्तु यह विवेकानन्द थे जिन्होंने धार्मिक कठमुल्लापन के खिलाफ सदैव जेहाद बोला। भारत से उन्हें इसलिए असीम प्यार था क्योंकि दुनिया के देशों में केवल भारत है जिसने न केवल आदर्शों को जन्म दिया है परन्तु आदर्शों की रक्षा के लिए उसने असाधारण तकलीफें उठाई हैं और असख्य कुर्बानियाँ की हैं। आज उनका यह संदेश कितना प्रासंगिक है।

स्वामी विवेकानन्द हिमालय की कंदराओं में तपस्या करने वाले कोई पलायनवादी साधु नहीं थे। उन्हें भारत के ३३ करोड़ लोगों से जिन्हें वह देवता की संज्ञा देते थे, बेसाख्ता मोहब्बत थी। समाज की कुरीतियों पर, जिनमें जातिवाद प्रमुख था, वे कहर बन कर टूटना चाहते थे। अत्याचारियों का वध करने तक की बातें उनने कही थीं। यह विवेकान्द थे जिन्होंने भारत में पिछड़ी जातियों के अर्थात् शूद्र राज की ऐतिहासिक भविष्यवाणी की थी। धर्म और विज्ञान के समन्वय की बातें भी भारत की धरती पर सबसे पहले विवेकानन्द ने की थीं। यह उनकी सलाह थी कि जिसके आधार पर प्रसिद्ध उद्योगपति जमशेद जी टाटा ने देश में तकनीकी शिक्षा के संस्थान खोले थे और अपने पहले संस्थान के निदेशक के पद पर स्वामीजी को नियुक्त करने की प्रार्थना की थी। इतिहास को यह नहीं मालूम कि उस प्रार्थना का क्या हुआ लेकिन स्वामी विवेकानन्द ने भौतिकवाद को कभी एक अभिशाप नहीं समझा। वह भारत की आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ आर्थिक प्रगति भी चाहते थे। वह हिन्दुस्तान में जीने वाले करोड़ों इंसानों को कीड़े-मकोड़े नहीं समझते थे। हिन्दुस्तान की दिशाओं में जमीन-आसमान का फर्क था। लेकिन मार्क्स सर्वहारा वर्ग को अंकगणित की इकाइयां समझाकर उन्हें क्रांति के सिपाहियों के रूप में तब्दील करना चाहता था, वहीं विवेकानन्द ने एक-एक मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक शक्ति के दर्शन किये थे और वह उन्हें उन शक्तियों से लैस करके निर्णयात्मक लड़ाई लड़ने के पक्षधर थे। मार्क्स की दिशा तो शायद टूट रही है लेकिन मास्को और पेइचिंग के विश्वविद्यालयों में विवेकानन्द की शिक्षाओं पर शोध कार्य अब भी जारी है। हीगेल की तरह विवेकानन्द यह मानते थे कि प्रत्येक देश के अस्तित्व का एक विशिष्ट ध्येय होता है। विवेकानन्द की शिक्षाओं

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में वीर और बहादुर बनना भी शामिल है। उन्होंने भारतीयों को इन शब्दों में ललकारा था, "हे वीर, निर्भीक बनो, साहस धारण करो। इस बात पर गर्व करो कि हम भारतीय है और गर्व के साथ कहो कि मैं भारतीय हूँ और हर भारतीय मेरा भाई है, बोलो ज्ञानहीन भारतीय, दरिद्र भारतीय, ब्राह्मण भारतीय, अछूत भारतीय मेरा भाई है। कहो प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। भारतीयता मेरा जीवन है। भारत के देवी-देवता मेरा ईश्वर है। भारतीय समाज मेरे बाल्यकाल का पालना है, मेरे यौवन का आनन्द उद्यान है, पवित्र स्वर्ग है और मेरी वृद्धावस्था की वाराणसी है। हे शक्ति की माँ मेरी निर्बलता को दूर करो मेरी पौरुषहीनता को हटा लो और मुझे मनुष्य बना दो।"

समकालीन भारतीयों और अन्य लोगों पर विवेकानन्द का असाधारण प्रभाव था। महात्मा गांधी तो उनसे मिलने बेलूरमठ तक गये थे परन्तु दुर्भाग्यवश स्वामी जी के अस्वस्थ रहने के कारण उनसे भेंट नहीं हो पायी। लोकमान्य तिलक उनके साथ रहे हैं और उनसे बहुत अधिक प्रभावित थे। स्वामी रामतीर्थ जिन्होंने मिस्र, जापान और अमरीका में नवीन वेदान्त की गर्जना की थी, विवेकानन्द से प्रभावित थे। अरविन्द उनके महान् प्रशंसक थे। जवाहरलाल नेहरू ने "भारत की खोज" में विवेकानन्द की असाधारण सराहना की है। सुभाषचन्द्र बोस उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था कि "विवेकानन्द में सब कुछ विधेयात्मक है, निषेधात्मक कुछ नहीं। यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो केवल विवेकानन्द को पढ़े।" रोम्यां रोलां ने शिकागो-धर्म-संसद के उनके भाषण को पढ़कर कहा था कि "स्वामी जी का एक-एक शब्द उनके अन्दर जैसे बिजली का करंट पहुचाता था। कितने भाग्यशाली थे वे जिन्होंने इस महान् नायक के होठों से वह भाषण स्वतः सुना है।" राधाकृष्णन् ने लिखा है "हिन्दू धर्म के समर्थन में विवेकानन्द ने जिस उत्साह का परिचय दिया है वह अतुलनीय है। उनका संन्यासी का गीत बंगालियों और नव राष्ट्रवादी भारतीयों की बाइबिल थी। उनकी कृति "कोलम्बस से अल्मोड़ा तक व्याख्यान" नये भारत की गीता है जिसका उद्देश्य अगणित अर्जुनों को कठिन कर्म के लिए जागृत करना और उनमें शक्ति का संचार करना था। स्वामी सत्यदेव उनके भक्त थे। राजगोपालाचारी ने तो यहाँ तक लिखा है कि यदि स्वामी विवेकानन्द नहीं होते तो कोई भी हिन्दुत्व और भारत को बचा नहीं सकता था न ही भारत को आजाद करा सकता था।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी आत्मानन्द जी : एक पुण्य-स्मरण

❑ डॉ. (श्रीमती) मीता झा
सहायक प्राध्यापक
शास. महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर

स्वामी आत्मानन्द जी का जन्म रायपुर जिले के बरबन्दा ग्राम में ६ अक्टूबर १९२९ को हुआ था। उनके बचपन का नाम तुलेन्द्र था। पिता श्री धनीराम वर्मा अध्यापक थे। उस समय ग्राम बरबन्दा से २ कि.मी. दूर माँढर नामक ग्राम के मिडिल स्कूल में अध्यापक थे। माता का नाम श्रीमती भाग्यवती देवी था। माता-पिता अत्यन्त धार्मिक थे तथा नियमित रूप से पूजा-पाठ किया करते थे।

माता भाग्यदेवी भगवान् शंकर की भक्त थीं तथा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा-उपासना किया करती थीं। बालक के जन्म की पूर्व रात्रि में उन्होंने एक स्वप्न देखा कि भगवान् शंकर उनके सामने प्रसन्न मुद्रा में खड़े हैं तथा देखते ही देखते छोटे से शिशु के रूप में उनकी गोद में आ गये। यह अनुभव माता के लिए अत्यन्त आह्लादकारी था। आनन्द-विभोर वे भगवान् शिव की भक्ति में डूब गयीं। प्रातःकाल भगवान् सूर्य के प्रकट होते ही उनके गर्भ से एक सुन्दर शिशु का जन्म हुआ। भगवान् शंकर की कृपा से प्राप्त होने के कारण उसका नाम घर में रामेश्वर रखा गया। राशिफल के आधार पर पाठशाला में उनका नाम तुलेन्द्र हुआ।

बालक तुलेन्द्र बचपन से ही अत्यन्त प्रभावशाली थे। उनका कण्ठ अत्यधिक मधुर था। चार वर्ष की आयु में ही उन्होंने हारमोनियम बजाना सीख लिया। उस छोटी आयु में हारमोनियम बजाते हुए जब वे सुमधुर कण्ठ से गीत गाते तो श्रोता मुग्ध हो जाते। सन् १९३३ में रायपुर के टाउन हाल में आयोजित शिक्षक-सम्मेलन में पं. रविशंकर शुक्ल की उपस्थिति में उन्होंने एक भजन गाया जिसको सुनकर सभी मन्त्र-मुग्ध हो गये।

गाँधी जी ने सन् १९३८ में बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार के लिए एक राष्ट्रव्यापी योजना बनायी। उस शिक्षा-योजना को क्रियान्वित करने के लिए देश के विभिन्न भागों से ३०-३० शिक्षकों

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

का चयन किया। उसमें उनके पिता श्री धनीराम वर्मा का भी चयन हुआ। तब वे सपरिवार वर्धा चले गये। उस समय बालक तुलेन्द्र की अवस्था ९ वर्ष की थी।

वर्धा में पूज्य बापू के साथ बिताये क्षणों का स्मरण करते हुए स्वामी जी के पिता श्री धनीराम जी बताते हैं कि- वर्धा में रहते हुए बालक तुलेन्द्र गांधी जी से बहुत घुलमिल गये। प्रति सन्ध्या गांधी जी की प्रार्थना-सभा में तुलेन्द्र भी अपने माता-पिता के साथ जाया करते। प्रार्थना के साथ गांधी जी बच्चों को कहानी सुनाया करते। बालक तुलेन्द्र के प्रति गांधी जी का विशेष स्नेहीभाव था। एक दिन किसी कारण बालक तुलेन्द्र ने अपनी माता की कोई बात नहीं मानी। बात ही बात में माता भाग्यवती देवी ने उसकी शिकायत कस्तूरबा जी से कर दी और कस्तूरबा जी ने यह बात गांधी जी को बता दी।

उस दिन प्रार्थना के बाद जब गांधी जी बालकों को कहानी सुनाने लगे तब उन्होंने एक ऐसे बालक की कहानी सुनायी जो अपने माता-पिता की बात नहीं मानता। तुलेन्द्र समझ गये कि यह बात उनके लिए कही जा रही है। वे बहुत दुःखी हुए और गांधी जी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी। गांधी जी ने बड़े प्यार से उन्हें अपनी गोद में लिया और न केवल क्षमा ही किया अपितु उन्हें विपुल स्नेह-आशीर्वाद से भर दिया।

इसी प्रकार उन्होंने एक दूसरा संस्मरण सुनाया कि बालक तुलेन्द्र को गांधीजी का अतिशय स्नेह प्राप्त था। जब वे टहलने के लिए जाते तो तुलेन्द्र उनकी लाठी के एक छोर को पकड़कर उनके आगे चलने लगते। स्नेहाधिक्य के कारण गांधी जी तुलेन्द्र के इस व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न होते।

समय की गति पंख बाँध कर उड़ती गयी। तुलेन्द्र ने जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखे। दो वर्षों तक गांधी जी के पुनीत साहचर्य में रहने के बाद उनके पिता की नियुक्ति पुनः रायपुर में संचालक, बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में हुई। सन् १९४२ में पिता श्री धनीराम जी वर्मा को स्वाधीनता आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल जाना पड़ा। उस समय किशोर तुलेन्द्र पर परिवार का एक बृहत्तर दायित्व आ पड़ा क्योंकि परिवार में कोई दूसरा वयस्क पुरुष नहीं था। परिवार भीषण आर्थिक समस्याओं से गुजर रहा था। पर माता भाग्यवती देवी अविचलित भाव से परिवार का पालन-

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पोषण करती रहीं। महात्मा गांधी का महान् जीवन तथा उनका अमिट स्नेह-आशीर्वाद, माता-पिता का अविचलित धैर्य तथा पिता का महान् देश प्रेम इन सबने तुलेन्द्र के जीवन पर अतिशय प्रभाव डाला जिसका परिणाम यह हुआ कि जब उन्होंने सन् १९५१ में नागपुर विश्वविद्यालय से प्योर मेथेमेटिक्स में एम.एस.सी की परीक्षा प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की तब उनके हृदय में वैराग्य की अग्नि उद्दीप्त रूप से प्रज्ज्वलित हो चुकी थी। उन्हें विदेश में जाकर उच्च अध्ययन करने के लिए विश्व-प्रसिद्ध "रेगुलर" छात्रवृत्ति भी मिली थी। इसके साथ उन्होंने पहले ही प्रयास में आई.ए.एस. की लिखित परीक्षा भी बहुत अच्छे अंक में उत्तीर्ण कर ली थी पर वे उसमें साक्षात्कार के लिए नहीं गये क्योंकि आध्यात्मिक जीवन का प्रबल आकर्षण उन्हें मोहित कर चुका था। अतः भौतिक जीवन के समस्त आकर्षणों को त्यागकर उन्होंने रामकृष्ण मठ, नागपुर में साधु-जीवन ग्रहण करने हेतु प्रवेश लिया। वे एक सामान्य ब्रह्मचारी हो गये। सन् १९६० में उन्होंने संन्यास-व्रत ग्रहण किया और उनका नाम स्वामी आत्मानन्द हुआ।

सन् १९६३ में सारे विश्व में स्वामी विवेकानन्द की प्रथम जन्म-शताब्दी सोत्साह मनायी जाने वाली थी। चूँकि स्वामी विवेकानन्द ने रायपुर में अपनी किशोरावस्था के दो महत्वपूर्ण वर्ष (१८७७-१८७९) व्यतीत किये थे, स्वामी आत्मानन्द जी की इच्छा थी कि स्वामी विवेकानन्द के रायपुर-निवास को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए रायपुर में उनके नाम से स्मारक बनाया जाये। इस संकल्प को लेकर वे १९५९ में रायपुर आये और विवेकानन्द आश्रम की स्थापना की। जब सन् १९६३ में विवेकानन्द जन्म-शताब्दी मनायी गयी उस समय तक विवेकानन्द आश्रम, रायपुर रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा में प्रचार-प्रसार का, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना के पुनरुत्थान का तथा विविध परोपकारी कार्यों का एक सशक्त केन्द्र बन गया था। सन् १९६८ में उस संस्था का विलय विश्व-प्रसिद्ध रामकृष्ण मिशन में हो गया तब से वह संस्था रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के नाम से जानी जाने लगी।

स्वामी आत्मानन्द जी का जीवन अत्यन्त गतिशील था। उपनिषदों के "चरैवेति" का सन्देश उनके जीवन में पूरी तरह साकार हो उठा था। रायपुर के आश्रम द्वारा वे अनेक सेवा कार्यों का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रवर्तन कर रहे थे। सन् १९८५ में उन्होंने बस्तर में निवास करने वाली शताब्दियों से उपेक्षित जनजाति "अबूझमाड़ियों" के विकास के लिए एक विराट् सेवा प्रकल्प हाथ में लिया। उनके कार्य उनके जीवनकाल में राष्ट्रीय महत्त्व के हो गये। उनके सेवा कार्यों से प्रभावित होकर शासन ने उन्हें समाज सेवा के क्षेत्र में एक लाख रुपयों का पुरस्कार देना चाहा था पर उन्होंने यह कहते हुए उसे लेना अस्वीकार कर दिया कि वे तो सन्यासी हैं वे तो फल की भावना से रहित होकर लोकसंग्रह के लिए कर्म करते हैं। इस प्रकार अपने जीवन से उन्होंने संन्यासी के आदर्श को प्रतिष्ठापित किया।

नारायणपुर के वनवासी सेवा प्रकल्प की प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्ति पर थी और वे द्वितीय पंचवर्षीय योजना की स्वीकृति शासन से लेकर जीप से रायपुर लौट रहे थे तब दिनांक २७ अगस्त, १९८९ को अपराह्न राजनांदगाँव से १३ किलोमीटर पहले काहका नामक गाँव के पास उनकी जीप दुर्घटनाग्रस्त हो गयी और असमय में ही उनका देहावसान हो गया। इतने भयंकर आघात के बाद भी उनके मुखमण्डल पर एक स्वर्णिम शान्ति और दिव्य मुस्कान विद्यमान थी मानों उन्होंने हँसते-हँसते मृत्यु को वरण कर लिया हो।

स्वामी जी का संगठन-कौशल विलक्षण था। मध्यप्रदेश में उन्होंने रायपुर और नारायणपुर में रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों की स्थापना की। इसके साथ ही वे मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और बिहार में लगभग २० आश्रम-केन्द्रों का कुशलतापूर्वक संचालन कर विविध सेवाकार्यों का प्रवर्तन कर रहे थे। इस सब कार्यों द्वारा उनकी जीवन शक्ति शत-शत रूपों में प्रकट हो रही थी।

स्वामी जी धर्म और दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे महान् सन्त और सुप्रसिद्ध विचारक थे। वे प्रभावशील वक्ता और कुशल सम्पादक थे। वे उत्तम खिलाड़ी और सुमधुर गायक थे। सबके साथ उनका अत्यन्त मधुर अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध उनके व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता थी।

स्वामी जी एक सफल लेखक थे। धर्म, दर्शन तथा अन्य सम-सामयिक विषयों पर आकाशवाणी से प्रसारित उनकी विपुल वार्ताएँ इसकी प्रमाण हैं। आकाशवाणी से प्रसारित उनकी संक्षिप्त वार्ताएँ "आत्मोन्नति के सोपान" नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई हैं। उसी प्रकार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
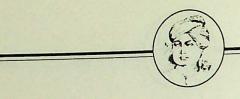
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में उन्होंने गीता पर कुल २१३ प्रवचन दिये थे जिनके प्रथम ७८ प्रवचनों को "गीतातत्व चिन्तन" नाम से दो भागों में प्रकाशित किया गया है। ये पुस्तकें विद्वत्-समुदाय तथा जन-सामान्य के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। उन्होंने अनेक पुस्तकों का कुशल सम्पादन किया तथा बंगला और अंग्रेजी की अनेक पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद भी किया।

इस प्रकार अनेक रूपों में उन्होंने मानवता की सेवा की। उनका सारा जीवन गीता के निष्काम कर्मयोग का जीवन्त भाष्य था। वे सर्वतोभावेन अनासक्त थे पर उनकी अनासक्ति में किंचित् भी कठोरता या निर्ममता नहीं थी। अपने व्यक्तित्व की इसी विशेषता के कारण वे युवकों के विशेष प्रेरणा स्रोत थे। उनके जीवन से प्रभावित होकर अनेक युवकों ने अपने जीवन का सब कुछ स्वामी विवेकानन्द के "शिव भाव से जीव सेवा" के आदर्श को अपनाकर रामकृष्ण संघ में दीक्षित होकर साधु-जीवन स्वीकार कर लिया। अपने जीवन में वे बापू के सामीप्य और उनसे प्राप्त स्नेह-आशीर्वाद को एक अमूल्य निधि मानते थे तथा उनका स्मरण कर पुलकित हो जाते थे। ऐसे महापुरुष को मेरा शत्-शत् नमन।

हृदय की महत्ता

मस्तिष्क एवं हृदय दोनों की हमें आवश्यकता है। अवश्य हृदय बहुत श्रेष्ठ है, हृदय के माध्यम से जीवन की महान् अन्तःप्रेरणाएँ आती हैं। मस्तिष्कवान्, पर हृदयशून्य होने की अपेक्षा मैं तो यह सौ बार पसन्द करूँगा कि मेरे जरा भी मस्तिष्क न हो, पर थोड़ा सा हृदय हो। जिसके हृदय है, उसी का जीवन सम्भव है, उसी की उन्नति सम्भव है, किन्तु जिसके तनिक भी हृदय नहीं, केवल मस्तिष्क है, वह सूखकर मर जाता है।

-स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द, इस्लाम और धर्मनिरपेक्षता

❑ कनक तिवारी

शिकागो धर्मसंसद में ११ सितम्बर १८९३ को भारत के प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ने अपने स्वागत के उत्तर में जो भाषण दिया था, उसका अधिकृत संस्करण बेरो लिखित ''हिस्ट्री आफ दी वल्ड्र्स पार्लियामेंट ऑफ रिलीजन्स'' से लिया गया है।

पूरी दुनिया में स्वामी विवेकानन्द के भाषण के इसी अधिकृत पाठ पर बहस-मुबाहिसा हुआ है। हम भारतीयों को स्वामी विवेकानन्द के भाषण में सहज प्रेषणीय धर्मनिरपेक्षता, विश्वबंधुत्व तथा राष्ट्रवाद की प्रखर-भावना ने सदैव गौरवान्वित किया है। विवेकान्द ने आज से एक सौ एक वर्ष पहले जो कालजयी संदेश दिया है, वह न केवल पूरी २० वीं शताब्दी के गाढ़े वक्त काम आया, वरन् २१वीं शताब्दी की दहलीज़ पर भी उससे अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे और समझदारी का बिरवा रोपा जा सकता है।

शिकागो की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रिपोर्टों में स्वामी विवेकानन्द के भाषण का जो ब्यौरा मिलता है, उससे उनके बारे में हमारी समझ अधिक परिपक्व तथा विस्तृत होती है। यह सही है कि किसी भी समकालीन अखबार ने अक्षरशः उनका भाषण प्रकाशित नहीं किया, परन्तु उनमें से कम से कम ४ पत्रों ''हेराल्ड'', ''इंटरओशन'', ''ट्रिब्यून'' और ''रेकॉर्ड'' ने स्वामी के वक्तव्य के अलग-अलग हिस्से छापे थे। इनमें से ''हेराल्ड'' की रिपोर्ट सबसे विस्तृत थी। इन सब रिपोर्टों और खबरों के इतिहासवृत्त के समवेत आकलन से विवेकानन्द द्वारा शिकागो धर्मसंसद में कहा एक अमर-वाक्य इस शताब्दी की प्रामाणिक जानकारी में सम्भवतः १० वर्ष पहले तक नहीं था।

अपने प्रारम्भिक सम्बोधन के बाद उनके जिस वाक्य पर धर्मसंसद में पहली बार करतल ध्वनि हुई, वह था, ''मुझे आपको यह बताते हुए गर्व होता है कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ कि जिसकी पवित्र भाषा संस्कृत में 'एक्सक्लूजन' (बहिष्कार) नामक शब्द का अनुवाद नहीं हो
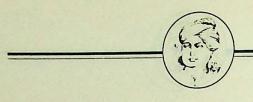
सकता।" यह कालजयी वाक्य मोटे तौर पर पूरी दुनिया को विवेकानन्द के शिकागो धर्मसंसद के भाषण के बुनियादी सोच के केन्द्रीय ऐलान के रूप में अब तक मालूम नहीं था। विवेकानन्द की पश्चिम यात्रा की अधिकृत शोधकर्ता जीवनीकार सुश्री मेरी लुईस वर्क ने क्रमशः १९५८ तथा १९७३ में "स्वामी विवेकानन्द-सेकेंड विज़िट टू वेस्ट : न्यू डिस्कवरीज़" के शीर्षक से प्रकाशित की। १९८३ में प्रकाशित इस कृति के पहले खण्ड में विदुषी तथा शोध-लेखिका ने अन्य खोजों के अतिरिक्त यह प्रेरक तथा विचारोत्तेजक वाक्य हमारी सदी की सांझ के हवाले किया है।

धर्मान्ध, कट्टर साम्प्रदायिक, हठधर्मी तथा संकीर्ण बुद्धिजीवियों का जमावड़ा विवेकानन्द को एक महान् "हिन्दू संत" सिद्ध करने में सिद्धहस्त है। उनकी व्याख्या, जो स्वामी जी के द्वारा प्राचीन हिन्दू गौरव के प्रति अभिभूत होकर कहे गये वीर-वाक्यों को संदर्भ से अलग कर की जाती रही है, स्वामी जी को पारम्परिक चिंतकों की अगली पायदान पर ही खड़ा करती है। लेकिन हमारी प्रज्ञा के वातावरण में ताजा हवा के झोंकों की तरह भारतीय वांग्मय में आए विवेकानन्द व्याख्याओं की भिंची मुट्ठी में कैद नहीं किए जा सकते। विवेकानन्द भारत के संविधान के जन्म के ५७ वर्ष पहले शिकागो धर्मसंसद में ३० वर्ष के युवक थे, जब उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल संदेश धर्मनिरपेक्षता का पाठ धर्मान्ध पुरोहित वर्ग को पढ़ाया था। उन्होंने कहा था, "मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने संसार की सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनके वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुंदर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। पृथ्वी को हिंसा से भरती रही है, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही है, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही है। यदि यह वीभत्स दानवी न होती तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता।"

१९७६ में "दिनमान" में प्रभा दीक्षित का एक विवादग्रस्त लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर विचारोत्तेजक लेख "विवेकानन्द : एक पुनर्मूल्यांकन" प्रकाशित हुआ था। प्रभा दीक्षित समाजवादी

रही हैं, दक्षिणपंथी कतई नहीं। फिर भी उन्होंने अपने उपरोक्त शोध-लेख में एक गलत स्थापना की थी कि अपने सार्वजनिक भाषणों, भेंटवार्ताओं और हिन्दू-ईसाई मित्रों को लिखे पत्रों में विवेकानन्द ने इस्लाम के गुणों का कोई जिक्र नहीं किया है, न ही उन्होंने जून १८९८ में मोहम्मद सरफराज़ हुसैन को लिखे पत्र के अनुसार "वेदांत के मस्तिष्क" को "इस्लाम के शरीर" से जोड़ने के लिए कोई व्यावहारिक कदम उठाया। वे वस्तुतः सर्वधर्म समभाव की मूल भारतीय भावना के प्रति सदैव सचेष्ट रहे। उनका हिन्दुत्व पुरातनपंथी, पुरोहितवादी, पारंपरिक या प्रतिगामी नहीं था। वह प्रगतिशील, प्रयोगधर्मी, प्रवाहमान और प्रकाशवान था। विवेकानन्द ने किसी भी अन्य धार्मिक चिन्तक के मुकाबले तुलनात्मक धर्म विज्ञान का न केवल अध्ययन किया, उसे वेदांत-संदेश का केन्द्रीय तत्व समझा।

विवेकानंद साहित्य में "इस्लाम", "मोहम्मद" आदि शब्द सैकड़ों बार आए हैं। उनमें धार्मिक कठमुल्लापन नहीं था। वह आश्वस्त थे कि उनके गुरु श्री रामकृष्ण देव ने "हिन्दुत्व, इस्लाम और ईसाई मत में वह अपूर्व एकता खोजी जो सब चीजों के भीतर रमी हुई है। श्री रामकृष्ण उस एकता के अवतार थे।" (खंड-१०, पृष्ठ-२१८) विवेकानन्द के लिये धर्म न तो सिद्धान्तों की थोथी बकवास है, न मत-मतांतरों का प्रतिपादन और खण्डन है और न बौद्धिक सहमति ही है। धर्म का अर्थ है हृदय के अंतर्गत प्रदेश में सत्य की उपलब्धि।

विवेकानन्द के अनुसार बौद्ध, ईसाई और इस्लाम धर्म प्रारम्भ से ही प्रसारणशील धर्म रहे हैं लेकिन मुसलमानों ने धर्म परिवर्तन और धर्म प्रचार में शक्ति का प्रयोग सर्वाधिक किया। इसलिए "तीन मिशनरी धर्मों में से इस्लाम को मानने वालों की संख्या सबसे कम है।" (१०/२७३) अपनी तमाम अच्छाईयों के बावजूद इस्लाम की हिंसक प्रवृत्तियों के प्रति स्वामी जी को साफ-साफ परहेज था। उन्होंने बार-बार कहा, "अरब के पैगंबर द्वारा प्रवर्तित धर्म से बढ़कर द्वैतवाद से चिपकने वाला... इतना रक्त बहाने वाला तथा दूसरों के प्रति इतना निर्मम धर्म कोई दूसरा नहीं हुआ।" (८/५८) "जो व्यक्ति (इस्लाम में) विश्वास नहीं करता, उसे मौत के घाट उतार देना चाहिए, जो अन्य उपासना गृह हैं, उन्हें जमींदोज कर देना चाहिए, जो पुस्तकें कोई भिन्न उपदेश देती हों उनको जला देना चाहिए।" (७/१८४) "धर्म कुछ वीभत्स करने की आशा कैसे दे सकता है? जैसे इस्लाम

विधर्मियों की हत्या करने की आज्ञा देता है।" कुरान में स्पष्ट लिखा है, " यदि विधर्मी इस्लाम ग्रहण न करें तो उन्हें मार डालो।"(८/४३)

इस्लाम की उपरोक्त साम्राज्यवादी फैलाव की बुनियादी वृत्ति के बावजूद विवेकानन्द ने कम से कम भारत में इस्लाम के आगमन को अनेक कारणों से ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण माना। स्वामी जी भारत के पहले इतिहासविद्, समाजशास्त्री और विचारक थे जिनके अनुसार भारत में इस्लाम के प्रभाव संबंधी निम्नलिखित बिंदु ध्यान में रखे जाने चाहिए-

१. मुसलमानों के शासन काल में हमारा उपकार हुआ था। उन्होंने (इस) एकाधिकारवाद को तोड़ा था। मुसलमानों की भारत-विजय पद्दलितों और गरीबों का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। (५/१८८७)

२. मुसलमान धर्म संसार में जिस बात का प्रचार करने आया है, वह है मुसलमान धर्मावलंबी मात्र एक-दूसरे के प्रति भ्रातृभाव। मुसलमान धर्म का यही सार तत्व है। (४/१३६)

३. मुसलमानों के लिए हिन्दुओं को जीत सकना कैसे संभव हुआ? यह हिन्दुओं की भौतिक समस्या का निरादर करने के कारण ही हुआ। सिले हुए कपड़े तक पहनना मुसलमानों ने इन्हें सिखाया। (३/३३४)

४. सभी धर्मों की उन्नति के बाधक तथा साधक कारणों की यदि परीक्षा ली जाए तो देखा जाएगा कि इस्लाम जिस स्थान पर गया है वहाँ के आदिम निवासियों की उसने रक्षा की है। वे जातियाँ अभी भी वहाँ वर्तमान है। उनकी भाषा और जातीय विशेषताएं आज भी मौजूद हैं। (१०/११३)

५. भारत के गरीबों में इतने मुसलमान क्यों हैं? यह सब मिथ्या बकवास है कि तलवार की धार पर उन्होंने धर्म बदला। जमींदारों और पुरोहितों से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए उन्होंने ऐसा किया। बंगाल में जहाँ जमींदार अधिक हैं, वहाँ हिन्दुओं से अधिक मुसलमान किसान हैं।(३/३३०)

इस्लाम और पैगम्बर की तमाम अच्छी शिक्षाओं के बावजूद इस्लाम की हिंसक आक्रामकता
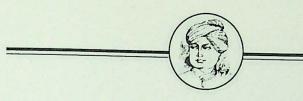
से लगभग आशंकित विवेकानन्द को भारत और वैदिक धर्म के बुनियादी ढांचे की मजबूती का जो आत्मविश्वास था, वह उनके बाद केवल गांधी में हमको देखने को मिलता है। विवेकानन्द यद्यपि कहते थे कि मुसलमान इस विषय में सर्वाधिक साम्प्रदायिक और संकीर्ण हैं, फिर मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य-हिन्दुत्व और इस्लाम वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर, यही एक आशा है। मैं अपने मानस-चक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और अजेय रूप में वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा।'' (६/४०५)

भारत के इतिहास में मुगलकालीन इस्लामी वैभव के प्रति विवेकानन्द बेखबर नहीं थे। उनकी राय में यह वर्ग भारत के धर्म पर आघात करता रहा और यायावर ही बना रहा, किन्तु मुगलों ने इस स्थान पर आघात नहीं किया। स्वामी जी के अनुसार, ''हिन्दू ही तो मुगलों के सिंहासन के आधार थे। जहांगीर, शाहजहां, दाराशिकोह आदि सभी की माताएँ हिन्दू थीं।'' (१०/५९) ''शिक्षित मुसलमान सूफी हैं। उनमें और हिन्दुओं में विशेष भेद नहीं है। हिन्दू विचार उनकी सभ्यता में रम गया है और उन्होंने शिक्षार्थी की स्थिति ले ली है। मुगल सम्राट् महान् अकबर व्यवहारतः हिन्दू था। (४/३३२) शिक्षित मुसलमानों, सूफियों और हिन्दुओं को अलग कर पाना बहुत कठिन है।

विवेकानन्द वेदान्त की श्रेष्ठ विचारशीलता के प्रति आत्ममुग्ध, आशान्वित और गौरवान्वित थे। वह साफ-साफ कहते थे कि वेदांत मत की आध्यात्मिक उदारता ने इस्लाम धर्म पर अपना विशेष प्रभाव डाला था। (इसलिए भारत का इस्लाम धर्म संसार के अन्यान्य देशों के इस्लाम धर्म की अपेक्षा पूर्ण रूप से भिन्न है।) (१०/३७७)

वे कहते थे ''यह भारत का कर्म था, उसका भाग्य था कि वह जीता जाये और अपनी बारी आने पर अपने विजेता पर विजय प्राप्त करे। वह अपने मुसलमान विजेताओं के प्रति यह कर चुका है। (४/२३२)

इस्लाम के प्रभाव, प्रचार और प्रहार से सर्वथा अविचलित विवेकानन्द ने कहा, उनमें वेदांत के सिवा कोई ईश्वर नहीं है। किन्तु वेदांत कहता है, ऐसा कुछ है ही नहीं जो ईश्वर न हो... मनुष्य देह

में स्थित मानव-आत्मा ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है। (८/२९) विवेकानन्द कहते थे, यद्यपि मुसलमानों के लिए अल्पविश्वासी होने के कारण यहूदी या ईसाई उतनी घृणा के पात्र नहीं है जितने काफिर और मूर्तिपूजक होने के कारण हिन्दू है। परंतु इतना सब होने के बावजूद हिन्दूओं ने कभी भी धार्मिक उत्पीड़न का आश्रय नहीं लिया। (यहाँ तक कि आज) एक मुसलमान संत की दरगाह जो मुसलमानों द्वारा निरादृत और विस्मृत कर दी गई है, वह हिन्दुओं द्वारा पूजी जाती है। (९/११५)

विवेकानन्द खुद के शब्दों में समुद्र पार करने वाले संसार के इतिहास के प्रथम हिन्दू संन्यासी थे। वेदांत की वैज्ञानिकता के प्रति उनमें अकाट्य निष्ठा थी। उन्होंने अमरीका, इंग्लैंड सहित पश्चिम के अनेक समृद्ध देशों की छाती पर भारतीय विचारों की श्रेष्ठा का परचम साहसपूर्वक फहराया था। उनकी अमरीकी यात्रा तो शेर की मांद में घुसकर उसे पालतू बना लेने का उपक्रम था। उन्होंने आज की मौलिक सभ्यता के पुरखे, ईसाई धर्म की दार्शनिकता, इतिहास और अवयवों पर इतने तार्किक प्रहार किये जिसका कोई समानान्तर ढूँढना मुश्किल है। इसके बावजूद विवेकानन्द अंततः सर्वधर्म समभाव के प्राचीन ऋषि आदर्शों का नया संस्करण बनकर ही अंतरिक्ष तक फैले। आज के सम्प्रदायवादियों और कठमुल्ला धार्मिक नेताओं के लिए जैसे विवेकानन्द ने कहा था, ''धर्म जो भी दावा करता है, तर्क की कसौटी पर उन सबकी परीक्षा करना आवश्यक है। धर्म यह दावा क्यों करता है कि वह तर्क द्वारा परीक्षित नहीं होना चाहता, यह कोई नहीं बतला सकता। तर्क के मापदण्ड के बिना किसी भी प्रकार का यथार्थ निर्णय धर्म के संबंध में भी नहीं दिया जा सकता।'' (८/४३)

यह कहना कि विवेकानन्द इस अर्थ में भी भविष्यदृष्टा थे कि हमारी मौजूदा समस्याओं को वह पहले से जानते थे, अजीब ही होगा, लेकिन उनके निम्नलिखित वाक्यांश, लगता है हमें उन बातों के लिए कुरदते हैं, जिनके लिए कुछ लोग इस महान् देश की जड़ें खोद रहे हैं -

(अ) विवेकानन्द भारत-नियामक थे, हमारे कानून मंत्री नहीं। समान सिविल कोड (नागरिक कानून) के सन्दर्भ में उनके ये विचार कितने प्रासंगिक हैं, ''बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, जैन सभी का यह एक भ्रम है कि सभी के लिए एक कानून और नियम हैं, यह बिल्कुल गलत है। जाति और व्यक्ति के प्रकृति भेद से शिक्षा-व्यवहार के नियम सभी अलग-अलग हैं। बलपूर्वक उन्हें एक करने से क्या होगा?
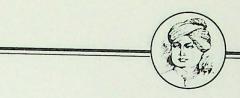
(आ) स्वामी जी के निर्वाण के कोई ९४ बरस बाद मुसलमानों के लिए मस्जिदें बनवाने की उनकी ऐतिहासिक घोषणा की सार्थकता वक्त की कसौटी पर है। "संसार में एक दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता का यदि थोड़ा बहुत भाव आज कहीं विद्यमान है तो यहीं है। हम भारतवासी मुसलमानों के लिए मस्जिदें और ईसाइयों के लिए गिरजाघर भी बनवा देते हैं।" (५/१४)

(इ) पाकिस्तान क्रिकेट या हॉकी टीम के भारतीय टीम से जीतने पर अल्पसंख्यकों में कुछ लोग यदि वाचाल प्रसन्नता प्रकट करते हैं तो उन पर देशद्रोही या गैर भारतीय होने का आरोप लगाया जाएगा ऐसा क्या विवेकानन्द जानते थे, क्योंकि उन्होंने ही यह कहा था, "फिर तो तलवार के भय से बने हैं या जो इस प्रकार बने हैं, उनके वंशज हैं। इन लोगों पर किसी प्रकार की अयोग्यता आरोपित करना स्पष्ट ही अन्याय होगा।"(४/२७०)

(ई) मुँबई के बम-विस्फोट और कश्मीर के आतंककारी गतिविधियों के सन्दर्भ में जब हम विवेकानन्द के विचार पढ़ते हैं, तब उनमें कुछ भी बासीपन नहीं लगता। इन्हीं शब्दों को तो भारत की संसद में आज भी सुना जा रहा है, "जब दूसरे देशों के मुसलमान यहाँ आकर भारतीय मुसलमानों को फुसलाते हैं कि तुम विधर्मियों के साथ मिल-जुलकर कैसे रहते हो, तभी अशिक्षित कट्टर मुसलमान उत्तेजित होकर दंगा-फसाद मचाते हैं।" (१०/३७७)

(उ) धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान का उद्देश्य, ऐलान और अलंकरण है जिसकी व्याख्या, परिभाषा और नीयत को लेकर बावेला मचा हुआ है। क्यों नहीं विवेकानन्द के इन मार्मिक उद्गारों को संविधान की पोथी के माथे पर प्रत्येक भारतीय की शपथ के रूप में अंकित कर दिया जाता जिसमें इस प्रथम भारतीय-संस्कृति-दूत की याद को पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थायी बनाया जाए, प्रत्येक सम्प्रदाय जिस भाव से ईश्वर की आराधना करता है, मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ही ठीक उसी भाव से आराधना करूँगा। मैं मुसलमानों के साथ मस्जिद में जाऊँगा। ईसाइयों के साथ गिरजे में जाकर क्रूसित ईसा के साने घुटने टेकूँगा। बौद्धों के मंदिर में प्रवेश कर बुद्ध और संघ की शरण लूँगा और अरण्य में जाकर हिन्दुओं के पास बैठ ध्यान में निमग्न हो उनकी भांति सबके हृदय को उद्भाषित करने वाली ज्योति के दर्शन करने में सचेष्ट होऊँगा। (३/१३८)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वाधीनता-संग्राम के मसीहा महात्मा गांधी

❑ स्वामी आत्मानन्द

भारत के स्वाधीनता संग्राम में सबसे अधिक योगदान यदि किसी का था, तो वह थे मोहनदास करमचंद गांधी, जिन्हें विश्व ने श्रद्धा और आदर के साथ महात्मा गांधी कहकर पुकारा। वे सच्चे आदर्शों के मसीहा थे। मसीहा वह है, जो मुर्दे को जिला देने की शक्ति रखता है और गांधीजी वह मसीहा थे, जिन्होंने भारत के स्वाधीनता-संग्राम की निष्प्राण देह में प्राण फूंके थे। यह देखकर आश्चर्य होता है कि साढ़े तीन हाथ के कृशकाय शरीर में इतनी शक्ति कहाँ से आकर भरी थी और यह शक्ति उन्हें किसी भौतिक उपाय से नहीं मिली थी। वह तो उनके हृदय की व्यापकता थी, उनकी संवेदनशीलता की तीव्रता थी, जो उन्हें अपने देश की गिरी हुई हालत को देख आकुल किये हुए थी। उनके हृदय के तार असहाय, पीड़ित और पददलित भारतीयों की बेबसी के राग में कसे हुए थे। जहाँ भी आह की ध्वनि निकलती वह उनके हृदय के तारों को झनझना देती। उनकी यह झनझनाहट ही उन्हें दक्षिण अफ्रीका ले गयी। १८९३ में वे डरबन के बन्दरगाह पर अपने हृदय में उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध आग की चिंगारी लेकर उतरे थे, और जब वे १९१४ में दक्षिण अफ्रीका से लौटे, तब वह चिंगारी लपट का रूप ले रही थी। दक्षिण अफ्रीका में उन्हें एक क्षण को भी चैन नहीं मिला था। उस महाद्वीप पर कदम रखते ही उन्हें गोरों की रंग-भेद और वर्ण-विद्वेष की नीति के विरुद्ध में जुट जाना पड़ा था। दक्षिण अफ्रीका में लड़ी गयी इन लड़ाईयों ने गांधीजी को सम्पन्न अनुभवों की प्रौढ़ता प्रदान की और वे अपना एक मौलिक राजनैतिक दर्शन विकसित कर सके। साथ ही, उन्होंने सत्याग्रह का नाम दिया और जिसने भारतीय राजनीति के आने वाले तीन दशकों में बड़े ही महत्व का काम किया।

दक्षिण अफ्रीका के अपने अभियान में विजयी हो ९ जनवरी १९१५ को जब गांधीजी बम्बई के अपोलो बन्दरगाह पर उतरे, तो एक राष्ट्रीय वीर जैसा ही उनका स्वागत हुआ। तीन दिन बाद जहांगीर पैलेस के महलनुमा भवन में उनके सम्मान में एक शानदार स्वागत-समारोह किया गया।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उसमें बम्बई के बेताज बादशाह, सर फिरोजशाह मेहता ने, जो कभी गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के आन्दोलन को संदेह की दृष्टि से देखते थे, 'भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का वीर' कहकर उनका अभिनन्दन किया।

अफ्रीका से वापस आने पर जब गांधीजी ने भारतीयों को कुचले हुए अभिमान, भूख, क्लेश और पतन से पीड़ित पाया, तो उन्होंने उनके मुक्तिकार्य को एक चुनौती और सुयोग समझकर तत्काल हाथ में ले लिया। कमजोर का अत्याचारों के आगे झुकना और बलवान् का और अधिक दबाते जाना, दोनों गलत हैं। उनका विश्वास था कि बिना राजनैतिक स्वतंत्रता के कोई भी उन्नति सम्भव नहीं। पर वे यह भी मानते थे कि पराधीनता से मुक्ति गुप्त संगठनों, सशस्त्र क्रान्तियों, आग लगाने और मार-काट के सामान्य तरीकों से नहीं प्राप्त करनी चाहिए।

गांधीजी कहते थे-अंग्रेज चाहते हैं कि हम अपने संघर्ष को मशीनगनों के स्तर पर लाएँ। परन्तु उनके पास शस्त्र हैं, हमारे पास नहीं। उनके हिसाब से हम उन्हें तभी हरा सकते हैं, जब हम ऐसे स्थान पर बने रहें, जहाँ हमारे पास हथियार हों और उनके पास न हों। गलत बात को सहन करते समय हमें उदारता से उसका मुकाबला करना चाहिए, जो जुल्म करनेवालों को चोट पहुंचाने तथा घृणा करने से हमें रोकती है। यदि हम अपने भीतर सम्पूर्ण साहस को इकट्ठा कर सकें, तो आततायी के भीतर छिपा हुआ मनुष्यत्व हमारी अपील का विरोध नहीं कर सकता।

तो, यह गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन की पूर्व प्रक्रिया थी, जो उन्होंने देश के समक्ष अपने विचारों के माध्यम से रखी। कांग्रेस के भीतर जो अपने आपको गरम दल के अन्तर्गत मानते थे, उन्हें गांधीजी के ऐसे दृष्टिकोण से निराशा ही हुई और उन्होंने गांधीजी को नरम दल का आदमी कहा। पर वस्तुतः गांधीजी न तो नरम दल के थे और न गरम दल के ही। वे न तो नरम दल वालों के समान इतना झुकना पसन्द करते थे कि हम पर गौरांगो का प्रभुत्व बना रहे और न वे गरम दल वालों के समान इतना अकड़ना पसन्द करते थे कि गौरांगो से सीधे मुँह बात ही न की जाये। वे नहीं चाहते थे कि देश को विप्लव और रक्त-क्रान्ति के माध्यम से मुक्ति दिलायी जाये। उन्होंने कहा था- 'यदि भारत हिंसा के सिद्धांतों को अपनाता है, तो वह अस्थायी विजय भले ही प्राप्त कर ले, लेकिन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तब वह मेरे हृदय का गर्व नहीं रहेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत को दुनिया के लिए एक संदेश देना है। लेकिन यदि भारत ने हिंसात्मक साधनों को अपनाया, तो यह परीक्षा का समय होगा। मेरा जीवन अहिंसा-धर्म द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित है, जिसे मैं हिन्दू धर्म की बुनियाद मानता हूँ।

कलकत्ता का वह कांग्रेस-अधिवेशन भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम में स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा, जब लाला लाजपत राय के सभापतित्व में गांधीजी ने असहयोग-प्रस्ताव पेश किया, क्योंकि वह असहयोग-प्रस्ताव ही था, जिसने अंततोगत्वा स्वाधीनता-संग्राम में भारत को विजय प्रदान की। उस असहयोग-प्रस्ताव के कुछ मुद्दे यों थे :—

१. सरकारी उपाधियों व अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाये और जिला म्युनिसिपल बोर्ड व अन्य स्थानीय संस्थाओं में जो लोग नामजद हुए हों, वे इस्तीफा दे दें।

२. सरकारी दरबारों, स्वागत-समारोहों तथा सरकारी अफसरों द्वारा किये गये या उनके सम्मान में किये गये अन्य सरकारी व अर्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इंकार किया जाये।

३. सरकार के, सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले व सरकार द्वारा नियंत्रित स्कूल व कॉलेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाये, उनके उत्थान में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूल व कॉलेजों की स्थापना की जाये।

४. ब्रिटिश अदालतों का वकीलों व मुविक्किलों द्वारा धीरे-धीरे बहिष्कार हो और उनकी मदद से खानगी झगड़ों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना हो।

५. फौजी, क्लर्कों व मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटानिया में नौकरी करने के लिए भर्ती होने से इंकार करें।

६. नयी कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें और यदि कांग्रेस की सलाह के बावजूद कोई उम्मीदवार चुनाव के लिए खड़ा हो तो मतदाता उसे वोट देने से इन्कार करें।

७. विदेशी माल का भी बहिष्कार किया जाये।

तो यह उस मसीहा का प्रस्ताव था, जो असहयोग-आन्दोलन की पूर्णाहुति थी। न्याय, बलिदान और सेवा का एक महान् आह्वान था, देश के लिए हर प्रकार के त्याग की पुकार थी। यह पहला मौका था, जब कि देशवासियों से उपाधि त्यागने, स्कूल और कॉलेजों को छोड़ने, नौकरी से इस्तीफा देने, उम्मीदवारी से नाउम्मीद होने और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी का माल लेने को कहा गया था। प्रस्ताव से सारी कांग्रेस में एकदम खलबली मच गयी। देशबन्धु चितरंजनदास और विपिनचंद्र पाल ने असहयोग के प्रस्ताव में हेर-फेर करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनकी प्रखर वाक्-शक्ति गांधीजी के हृदय की पुकार को न हिला सकी। महात्मा गांधी के प्रस्ताव पर आखिरकार मत लिया गया और वह ८८४ के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियों की सहमति से पास हो गया।

गांधीजी विजयी हुए और असहयोग ने तात्कालिक रूप धारण कर लिया। ब्रिटिश सरकार, जो अब तक कांग्रेस को केवल एक बोलने वाली संस्था समझे बैठी थी, उसके परिवर्तित विराट् रूप को देखकर चौंक उठी। सरकार सोच रही थी, यह कांग्रेस नहीं, गांधी है। गांधीजी और कांग्रेस एक हो गये थे। असहयोग प्रस्ताव को स्वीकार करते ही पुरानी कांग्रेस खत्म होकर गांधी कांग्रेस हो चली थी।

नागपुर के कांग्रेस-अधिवेशन में गांधीजी के इस असहयोग-प्रस्ताव पर मुहर लगा दी गयी। देशबन्धु दास इस कांग्रेस में कलकत्ते के निर्णय को रद्द कराने का पक्का इरादा लेकर आये थे, किन्तु अन्त में गांधीजी की ही विजय हुई। देशबन्धु दास विरोध करने के बजाय प्रस्ताव के समर्थक हो गये और दास ही नहीं, बल्कि असहयोग के पुराने विपक्षी पं. मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय भी गांधी जी के समर्थक हो गये। फलतः कलकत्ते का असहयोग-प्रस्ताव, जो उस समय केवल गांधीरूपी अकेले पाये पर खड़ा था, नागपुर के चारों पायों पर प्रतिष्ठित हो गया, क्योंकि गांधीजी के साथ-साथ दास, नेहरू और लालाजी भी उसके पक्ष में हो गये थे।

नागपुर-कांग्रेस से भारत में एक नये सक्रिय युग का ही प्रारंभ हो गया और इस नये युग के प्रवर्तक थे गांधीजी, जिनके नेतृत्व में देश अपने स्वाधीनता संग्राम में विजयी हुआ पर गांधीजी के लिए स्वाधीनता केवल एक राजनैतिक तथ्यमात्र नहीं थी, यह एक सामाजिक सच्चाई भी थी। वे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भारत को मात्र विदेशी शासन से नहीं, अपितु सामाजिक कुरीतियों और साम्प्रदायिक झगड़ों से भी मुक्ति दिलाने के लिए लड़े थे। उन्होंने कहा था- "मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूँगा, जिसमें गरीब से गरीब भी यह महसूस करे कि यह देश उसका है और इसके निर्माण में उसकी जोरदार आवाज है। ऐसे भारत में, जिसमें ऊँच-नीच वर्गों का भेद नहीं होगा, जिसमें सभी जातियाँ मेल-मिलाप के साथ रहेंगी। छुआछूत और नशेबाजी के लिए कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों और पुरुषों के समानाधिकार होंगे। हम शेष दुनिया के साथ शान्ति के सम्बन्ध कायम करेंगे, न शोषण करेंगे और न शोषण होने देंगे और इसलिए हमारी सेना इतनी कम होगी, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसे तमाम हितों का, जो लाखों भोले-भाले लोगों के हितों के विरुद्ध नहीं हैं, उदारता के साथ आदर किया जायेगा। व्यक्तिगत तौर पर मैं स्वदेशी और विदेशी के भेद से घृणा करता हूँ। यह है मेरे स्वप्नों का भारत।

भले ही यह स्वप्न आज पूरा न हों पाया हो, पर स्वाधीनता-संग्राम का वह मसीहा अपने जीवन के माध्यम से जो पथ दिखाकर गया है, वही विश्व के लिए शान्ति का पथ है और केवल वही समूल-विध्वंस के कगार पर खड़ी दुनिया को विनाश से बचा सकता है।

ऊपर उठना ही धर्म है

यह धर्म ही है, परे की खोज ही है, जो मनुष्य और पशु में भेद करती है। ठीक ही तो कहा गया है कि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो सम्भवतः ऊपर की ओर देखता है, अन्य सभी प्राणी स्वभावतः नीचे की ओर देखते हैं। ऊपर की ओर देखना, ऊपर उठना तथा पूर्णता की खोज करना - इसे ही मोक्ष कहते हैं।

-स्वामी विवेकानन्द

धर्म-महासभा : स्वागत का उत्तर

(विश्व-धर्म-महासभा, शिकागो, ११ सितम्बर, १८९३ ई.)

अमेरिकावासी वहनों तथा भाइयों,

आपने जिस सौहार्द्र और स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ; और सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।
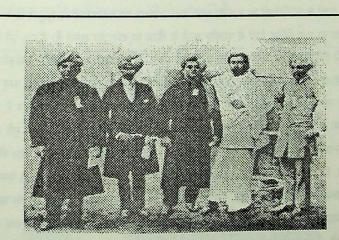
१८९३ में शिकागो में भारतीय दल
बाएँ से : नरसिंहाचार्य, लक्ष्मीनारायण, विवेकानन्द, धर्मपाल तथा वीरचंद गांधी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
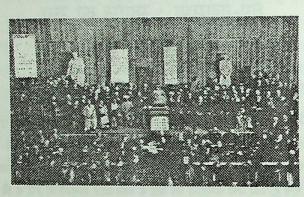
शिकागो धर्म महासभा, ११ सितंबर १८९३

मैं इस मंच पर से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियों का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान् ज़रथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयों, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं अपने बचपन से करता रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

-'जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।'

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है, स्वतः ही गीता के इस अद्भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा है :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

-'जो कोई मेरी ओर आता है-चाहे किसी प्रकार से हो-मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।'

धर्म महासभा के मंच पर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धिता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये वीभत्स दानवी न होतीं, तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धिता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु-निनाद सिद्ध हो।

टॉल्स्टाय का विवेकानन्द-अनुशीलन

❑ स्वामी विदेहात्मानन्द

स्वामी विवेकानन्द की कृतियों के साथ टॉल्स्टाय का प्रथम परिचय १८९६ ई. के सितम्बर में हुआ। इन्हीं दिनों एक भारतीय विद्वान् अनेन्द्र कुमार दत्त ने उसी वर्ष न्यूयार्क से प्रकाशित स्वामीजी का 'राजयोग पर व्याख्यान' ग्रंथ टॉल्स्टाय को उपहारस्वरूप भेजते हुए लिखा-

"आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमें प्राप्त होनेवाली प्राचीनतम भारतीय दर्शन की चरम उपलब्धियों के साथ आपके सिद्धान्तों का पूर्ण सामंजस्य है।" इसके उत्तर में १३ सितम्बर को टॉल्स्टाय ने सूचित किया-

"आपका पत्र और पुस्तक दोनों ही प्राप्त हुए, इसके लिए आप मेरा विशेष धन्यवाद स्वीकार करें। ग्रन्थ अत्यन्त विलक्षण है और इससे मुझे काफी शिक्षा मिली है। इसमें निरूपित आत्मा का वास्तविक स्वरूप, अर्थात् उस सिद्धान्त का दार्शनिक पक्ष अति सुन्दर है। मानवजाति अब तक जीवन के बारे में सच्चे, उदात्त और स्पष्ट धारणा से बारम्बार पीछे हटती जा रही है, पर वह कभी भी उसके दायरे से बाहर नहीं जा सकी।" अगले दिन उन्होंने अपनी डायरी में लिखा- "इस दौरान मुझे एक हिन्दू का पत्र और भारतीय प्रज्ञा की एक मोहक पुस्तक प्राप्त हुई।"

इसके बाद कई वर्षों तक उन्हें स्वामीजी की अन्य कोई भी पुस्तक पढ़ने को नहीं मिली। इस बीच उन्होंने मैक्समूलर लिखित 'रामकृष्ण और उनकी उक्तियाँ' ग्रन्थ के कुछ अंश पढ़े और उन्हें 'प्रतिभावान ज्ञानी पुरुष' और उनकी उक्तियों को 'अद्भुत' माना। पर लगता है उस समय उन्हें ज्ञात न था कि विवेकानन्द उन्हीं के शिष्य हैं।

स्वामीजी के अन्याय ग्रन्थों के साथ टॉल्स्टाय का अन्तरंग परिचय लगभग बारह वर्ष बाद अर्थात् १९०८ ई. में हुआ। इस बार विवेकानन्द वाङ्मय के साथ उनका परिचय एक रूसी लेखक

आइ.एफ. नस्जीविन ने कराया। नस्जीविन ने स्वामीजी के दो लेखों 'मेरे गुरुदेव' तथा 'ईश्वर और मानव' एवं 'नासदीय सूक्त' कविता का रूसी भाषा में अनुवाद किया था। टॉल्स्टाय ने अपने ७ जुलाई १९०७ के पत्र में नस्जीविन से अनुरोध किया- "उस ब्राह्मण (हिन्दू) की लिखी पुस्तक मुझे भेजें। ऐसी पुस्तकें पढ़ने में परम आनन्द का बोध होता हो, आत्मा का उन्नयन होता है। १९०८ ई. में नस्जीविन का ग्रन्थ Voices of People (लोकवाणी) प्रकाशित हुआ, जिसमें स्वामीजी का 'ईश्वर और मानव' लेख तथा उपर्युक्त कविता का रूसी अनुवाद भी संकलित हुआ था। इसे प्राप्त होते ही टॉल्स्टाय ने पढ़ा और नस्जीविन के नाम अपने ९ मार्च १९०८ ई. के पत्र में लिखा- "आपकी Voices of People नामक अद्‌भुत पुस्तक मैंने अभी-अभी पढ़कर समाप्त की है और इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ।" अगले दिन उन्होंने अपनी डायरी में लिखा- "कल मैंने हिन्दू का वह अद्‌भुत लेख पढ़ा, जिसका नस्जीविन ने रूसी भाषा में अनुवाद किया है। उसमें मेरे अपने विचारों की अस्पष्ट अभिव्यक्ति है।" फिर १२ मार्च को वे पुनः नस्जीविन को लिखते हैं- "हिन्दू के उस लेख ने मेरे मन को बड़ा प्रभावित किया है। वह (लेख) असाधारण रूप से अच्छा है।"

अब टॉल्स्टाय ने स्वामीजी के अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त करने और पढ़ने का प्रयास किया। उन्हें यह पता चला कि श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के बीच क्या सम्बन्ध हैं। २५ मई १९०८ को उन्होंने डी.पी. मैकोवित्सिकी को बताया कि उस दिन उन्होंने विवेकानन्द ग्रन्थावली के दो खण्ड पढ़े, जो कि उन्हें उसी दिन प्राप्त हुए थे और कहा, "उनमें ईश्वर, आत्मा, मानव और धर्मों की एकता विषयक अद्‌भुत गहन विचार हैं। वे रामकृष्ण के शिष्य हैं, जिनका १९०२ ई. में देहान्त हुआ।"

अब से टॉल्स्टाय स्वामीजी के ग्रन्थों का गम्भीर और सोत्साह अध्ययन करने लगे। वे पुस्तकों पर उसके महत्वपूर्ण अंशों को रेखांकित करते और जो अंश उन्हें विशेष प्रभावित करते उन्हें अपनी नोटबुक में लिख लेते। टॉल्स्टाय १९०८ के जून में विवेकानन्द साहित्य के अध्ययन में डूबे हुए थे। इस काल का किंचित् विवरण हम उनकी मैकोवित्स्की की डायरी से उद्धृत करेंगे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

५ जून के दिन उन्होंने मैकोवित्सकी से कहा- "सुबह छह बजे से ही मैं विवेकानन्द के बारे सोच रहा हूँ। कल दिन भर विवेकानन्द के ग्रन्थ पढ़ता रहा। उनमें बुराई का प्रतिरोध करने हेतु हिंसा का सहारा लेने के औचित्य पर एक अध्याय है। बड़ी ही प्रतिभापूर्वक लिखा गया है।"

२१ जून को वे वी.जी. चेरट्कोव के साथ स्वामीजी के 'कृष्ण' विषयक प्रबन्ध पर चर्चा करते रहे। टॉल्स्टाय ने कहा- "कभी-कभी बुराई के बदले भलाई करने का आदेश देते हैं और कभी-कभी बुराई करनेवाले का वध करके, उसे पुनर्जीवन देकर, जीवन के आनन्द की अनुभूति कराते हैं।"

२६ जून को मैकोवित्स्की लिखते हैं- "स्वामी विवेकानन्द ग्रंथावली के तीन खण्डों में से एक हाथ में लिए हुए कल टॉल्स्टाय हाल में आये। टॉल्स्टाय ने कहा, 'उत्तम ग्रन्थ है! बारम्बार पढ़ने योग्य इसमें कितने ही विचार हैं।' और बाद में, जब मैं उनका सिर सहला रहा था, वे विवेकानन्द का ग्रन्थ पढ़ते रहे और उसके कुछ वाक्यों को रेखांकित किया।' उस दिन टॉल्स्टाय ने अपनी डायरी में लिखा- "आज प्रथम बार विवेकानन्द के उस कथन की सत्यता की सम्भावना का बोध हुआ कि 'मैं' को पूर्णरूप से 'तुम' में विलीन किया जा सकता है; यह भी बोध हुआ कि आत्मत्याग किसी विशेष उद्देश्य से नहीं अपितु सत्य के ज्ञान के द्वारा करना होगा। अपने स्वयं और अपने 'अहं' भाव के प्रति भयंकर आसक्ति से बच निकलना परम कठिन और परम आवश्यक है। और मुझे अब अपनी मृत्यु के पूर्व, अपने 'अहं' त्याग की सम्भावना का बोध होने लगा है। वह (अहं) कोई सद्गुण नहीं है।"

४ जुलाई १९०८ को टॉल्स्टाय ने अपनी डायरी में लिखा- "ईश्वर विषयक विवेकानन्द का लेख पढ़ा-अति उत्तम है। इसका अनुवाद होना चाहिए। वह विषय मेरे मन में भी उदित हुआ था।"

१६ अगस्त को उन्होंने अपना 'धर्म और विज्ञान' लेख पूरा किया जिसमें उन्होंने विश्व के अन्य ऋषियों एवं विचारकों के साथ ही महान स्वामीजी की विरासत को भी आत्मसात करने का अनुरोध किया है।

१६ फरवरी १९०९ के दिन टॉल्स्टाय को स्वामीजी की ग्रन्थावली का एक अन्य खण्ड प्राप्त हुआ, जो एक भारतवासी ने उन्हें उपहार के रूप में भेजा था। मैकोवित्स्की ने लिखा है कि टॉल्स्टाय ने इसे पढ़ा और पहले के अन्य खण्डों की भाँति ही खूब पसन्द किया। टॉल्स्टाय को प्राप्त होनेवाली स्वामीजी की यही अन्तिम पुस्तक थी।

७ मई को उन्होंने अपने प्रकाशक पोस्रेदनिक पब्लिशिंग हाउस के सम्पादक से कहा- "आधुनिक भारतीय विचारकों में सर्वप्रमुख हैं विवेकानन्द और उनके ग्रन्थों का (रूसी भाषा में) प्रकाशन होना चाहिए।" उसके कुछ ही दिन पूर्व टॉल्स्टाय ने अपने 'शिक्षा' विषयक निबन्ध में सुकरात, रूसो और काण्ट आदि विश्व के प्रमुख विचारकों के साथ स्वामीजी का भी उल्लेख किया है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के रूसी दार्शनिक रचनाओं के सुप्रसिद्ध संकलन 'वेखी' के बारे में टिप्पणी करते हुए उन्होंने २४ जून को लिखा- "जब पढ़ने के लिए रामकृष्ण, बुद्ध, विवेकानन्द, बाइबिल जैसी चीजें उपलब्ध हैं, तो 'वेखी' पढ़ना बेकार है।"

१९१० टॉल्स्टाय के जीवन का अन्तिम वर्ष था। और उस वर्ष भी वे विवेकानन्द के ग्रन्थों का अनुशीलन और प्रशंसा करते रहे। २९ मार्च को चेकोस्लोवाकिया के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी और विचारक जॉन मशरिक जब टॉल्स्टाय से मिले, तो उन्होंने पूछा कि क्या आप भारतीय दर्शन का अध्ययन कर रहे हैं। इस पर टॉल्स्टाय ने बताया कि आधुनिक भारत के श्रेष्ठतम दार्शनिक विवेकानन्द हैं।

टॉल्स्टाय की बड़ी इच्छा थी कि स्वामीजी के ग्रन्थों का रूसी भाषा में अनुवाद और प्रकाशन हो। उन्होंने इस दिशा में थोड़ा बहुत कार्य किया भी था। उनके देहावसान के पश्चात् नस्जीविन तथा उनके अन्य अनुयायियों ने 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' मैक्समूलर की 'श्रीरामकृष्ण और उनकी उक्तियाँ' तथा स्वामीजी के अनेक ग्रन्थों के अनुवाद और प्रकाशन की व्यवस्था की।

-'विवेक ज्योति' वर्ष ३३, अंक-४, से साभार

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अग्नि-मंत्र

(श्रीमती ओलि बुल को लिखित)

१७१९, टर्क स्ट्रीट,
सैन फ्रांसिस्को,
१ अप्रैल, १८९०

प्रिय धीरा माता,

आपका स्नेहपूर्ण पत्र आज सुबह मुझे प्राप्त हुआ। न्यूयार्क के सभी मित्र श्रीमती मिल्टन की चिकित्सा से आरोग्य-लाभ कर रहे हैं, यह जानकर मुझे अत्यन्त खुशी हुई। ऐसा मालूम होता है कि लॉस एंजिलिस में उन्हें नितान्त विफल होना पड़ा था, क्योंकि हमने जिन व्यक्तियों को उनसे परिचित कराया था, उन सभी लोगों ने मुझसे कहा कि मर्दन की चिकित्सा से उनकी दशा पहले से भी खराब हो गयी। श्रीमती मिल्टन से मेरा स्नेह कहना। कम से कम उनकी 'मसाज' उस समय मुझे कुछ लाभ पहुँचाती थी। बेचारा डाक्टर हीलर! हम लोगों ने उसे तत्क्षण ही उसकी पत्नी के इलाज के लिए लॉस एंजिलिस भेजा था। यदि उस दिन सुबह उसके साथ आपकी भेंट तथा बातचीत हुई होती, तो बहुत ही अच्छा होता। मर्दन-चिकित्सा के बाद ऐसा मालूम होता है कि श्रीमती हीलर की दशा पहले से भी अधिक खराब हो गयी है-उसके शरीर में केवल हाड़ ही हाड़ रह गये हैं, और डॉक्टर हीलर को लॉस एंजिलिस में ५०० डालर का व्यय करना पड़ा है। इससे उनका मन बहुत खराब हो गया है। किन्तु मैं 'जो' को ये सारी बातें लिखना नहीं चाहता हूँ। उसके द्वारा गरीब रोगियों की इतनी सहायता हो रही है, इसी कल्पना में वह मस्त है। किन्तु ओह! यदि वह कदाचित् लॉस एंजिलिस के लोगों तथा उस वृद्ध डॉक्टर हीलर के अभिमत सुनती, तो उसे उस पुरानी बात का मर्म विदित होता जो किसी के लिए बतलाना उचित नहीं है। यहाँ से डॉक्टर हीलर को लॉस एंजिलिस भेजनेवालों में मैं नहीं था, मुझे इसकी खुशी है। 'जो' ने मुझे लिखा है कि उसके समीप से रोग के इलाज का समाचार पाते ही

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

डॉक्टर हीलर अत्यन्त आग्रह के साथ लॉस एंजिलिस जाने के लिए तैयार हो उठे थे। वह वृद्ध महोदय मेरी कोठरी में जिस प्रकार कूदते डोल रहे थे, वह दृश्य भी 'जो' को देखना चाहिए था! ५०० डालर खर्च करना उस वृद्ध के लिए अधिक था! वे जर्मन हैं। वे कूदते रहे तथा अपनी जेब में थप्पड़ जमाते हुए यह कहते रहे-'यदि इस प्रकार के इलाज की बेवकूफी में मैं फँसता, तो ५०० डालर आपको भी तो प्राप्त हो सकते थे।' इनके अलावा और भी गरीब रोगी हैं, जिनको मर्दन के लिए कभी-कभी प्रति व्यक्ति ३ डालर खर्च करना पड़ा है और अभी तक 'जो' मेरी तारीफ ही कर रही हैं। 'जो' से आप ये बातें न कहें। वह और आप किसी भी व्यक्ति के लिए यथेष्ट अर्थ-व्यय कर सकती हैं, आप लोग इतनी सम्पन्न हैं। जर्मन डॉक्टर के बारे में भी ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु सीधे-साधे बेचारे गरीबों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था नितान्त ही कठिन है। वृद्ध डॉक्टर की एक ऐसी धारणा हो गयी है कि कुछ भूत-प्रेत आपस में मिलकर उनके घर को इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं! उन्होंने मुझे अतिथि बनाकर इसका प्रतिकार तथा अपनी पत्नी को स्वस्थ करना चाहा था, किन्तु उन्हें लॉस एंजिलिस दौड़ना पड़ा, और उसके फलस्वरूप सब कुछ उलट-फेर हो गया! और अभी तक यद्यपि वे मुझे अतिथि रूप से पाने के लिए विशेष सचेष्ट हैं, किन्तु मैं उनसे किनारा काट रहा हूँ यद्यपि उनसे नहीं किन्तु उनकी पत्नी तथा साली से। उनकी निश्चित धारणा है कि ये सब भूतों के काण्ड हैं। थियोसाफ़ी के वे एक सदस्य रह चुके हैं। कुमारी मैक्लिआड को लिखकर कहीं से कोई भूत झाड़नेवाले गुणी को बुलाने की मैंने उन्हें सलाह दी थी, जिससे कि वे अपनी पत्नी के साथ झटपट वहाँ पहुँचकर पुनः ५०० डालर व्यय कर सकें!

दूसरों का भला करना सर्वदा निर्विवाद विषय नहीं है।

मैं अपने बारे में यह कह सकता हूँ कि 'जो' जब तक खर्च करती रहेगी, तब तक मजा लूटने को मैं तैयार हूँ-चाहे वे हड्डी चटकानेवालों हों अथवा मर्दन करनेवाले। किन्तु मर्दन-चिकित्सा के लिए लोगों को एकत्र कर इस प्रकार भाग जाना तथा सारी प्रशंसा का बोझ मेरे कन्धों पर डालना ऐसा आचरण 'जो' के लिए उचित नहीं था। वह और कहीं से किसी को मर्दन-प्रक्रिया के लिए नहीं बुला रही है इससे मैं खुश हूँ। अन्यथा 'जो' को पेरिस भागना पड़ता और श्रीमती लेगेट को सारी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

प्रशंसाओं को बटोरने का भार अपने ऊपर लेना पड़ता। मैंने केवल दोष ढँकने के लिए डॉक्टर हीलर के समीप एक ईसाई चिकित्सक को, जो वैज्ञानिक तरीकों (अर्थात् मानसिक शक्ति की सहायता द्वारा) रोग दूर करते हैं, भेज दिया था, किन्तु उनकी पत्नी ने उस चिकित्सक को देखते ही किवाड़ बन्द कर लिये एवं यह स्पष्ट कह दिया कि इन अद्‌भुत चिकित्साओं के साथ वे किसी प्रकार का सम्पर्क रखना नहीं चाहतीं। अस्तु, मैं विश्वास करता हूँ तथा सर्वान्तःकरण से प्रार्थना करता हूँ कि इस बार श्रीमती लेगेट स्वस्थ हो उठें।

मैं आशा करता हूँ कि वसीयतनामा भी शीघ्र पहुँच जायगा, इसके लिए मैं थोड़ा-सा चिन्तित हूँ। भारत से इस डाक के द्वारा वसीयतनामे की एक प्रति मिलने की भी मुझे आशा थी, कोई पत्र नहीं आया है, यहाँ तक कि 'प्रबुद्ध भारत' भी नहीं, यद्यपि मैं देखता हूँ कि 'प्रबुद्ध भारत' फ्रांसिस्को पहुँच चुका है।

उस दिन समाचार पत्र से यह विदित हुआ कि कलकत्ते में एक सप्ताह के अन्दर ५०० व्यक्ति प्लेग से मर चुके हैं। मां ही जानती है कि कैसे मंगल होगा।

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है श्री लेगेट ने वेदान्त-समिति को चालू कर दिया है। बहुत अच्छी बात है।

ओलिया किस प्रकार है? निवेदिता कहाँ है। उस दिन मैंने '२१वाँ मकान, पश्चिम ३४'-इस पते पर उसे एक पत्र लिखा था। यह देखकर कि वह कार्य में अग्रसर हो रही है, मैं अत्यन्त आनन्दित हूँ। मेरा आन्तरिक स्नेह ग्रहण करें।

आपकी चिरसन्तान,

विवेकानन्द

पुनश्च— मेरे लिए जितना करना सम्भव है, उतना अथवा उससे अधिक कार्य मुझे मिल रहा है। जैसे भी हो, मैं अपना मार्ग-व्यय अवश्य एकत्र करूँगा। ये लोग यद्यपि मेरी अधिक सहायता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करने में असमर्थ हैं, फिर भी मुझे कुछ न कुछ देते रहते हैं, तथा मैं भी निरन्तर परिश्रम कर जिस तरह भी होगा अपना मार्ग-व्यय एकत्र कर सकूँगा और उसके अतिरिक्त कुछ सौ रूपये भी प्राप्त करूँगा। अतः मेरे खर्च के लिए आप कुछ भी चिन्ता न करें।

-'विवेक-ज्योति' वर्ष २६, अंक-६, से साभार

एक आदर्श की आवश्यकता

आदर्श हमसे बहुत दूर हैं और हम उनसे बहुत नीचे पड़े हुए हैं, तथापि हम जानते हैं कि हमें एक आदर्श अपने सामने रखना आवश्यक है। इतना ही नहीं, हमें सर्वोच्च आदर्श रखना आवश्यक है। अधिकांश व्यक्ति इस जगत् में बिना किसी आदर्श के ही जीवन के इस अन्धकारमय पथ पर भटकते फिरते हैं। जिसका एक निर्दिष्ट आदर्श है, वह यदि एक हजार भूलें करता है, तो यह निश्चित है कि जिसका कोई भी आदर्श नहीं है, वह पचास हजार भूलें करेगा। अतएव एक आदर्श रखना अच्छा है। इस आदर्श के सम्बन्ध में जितना हो सके, सुनना होगा, तब तक सुनना होगा, जब तक वह हमारे अन्तर में प्रवेश नहीं कर जाता, हमारे मस्तिष्क में पैठ नहीं जाता, जब तक वह हमारे रक्त में प्रवेश कर उसकी एक एक बूँद में घुल-मिल नहीं जाता, जब तक वह हमारे शरीर के अणु-परमाणु में व्याप्त नहीं हो जाता।

-स्वामी विवेकानन्द

अग्नि-मंत्र

(जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर को लिखित)

५४१, डियरबोर्न एवेन्यू
शिकागो,
३ जनवरी, १८९५

प्रिय महाशय,

प्रेम, कृतज्ञता और विश्वासपूर्ण हृदय से आज मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। मैं आपसे यह पहले ही बता देना चाहता हूँ कि आप उन थोड़े मनुष्यों में से एक हैं, जिन्हें मैंने अपने जीवन में पूर्ण रूप से दृढ़ विश्वासी पाया। आपमें पूरी मात्रा में भक्ति और ज्ञान का अपूर्व सामंजस्य है। इसके साथ ही अपने विचारों को कार्यरूप में परिणित करने में भी आप पूरे समर्थ हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आप निष्कपट हैं, और इसलिए मैं अपने कुछ विचार आपके सामने विश्वासपूर्वक उपस्थित करता हूँ।

भारत में हमारा कार्य अच्छे ढंग से शुरू हुआ है और इसे न केवल जारी रखना चाहिए, बल्कि पूरी शक्ति के साथ बढ़ाना भी चाहिए। सब तरह के सोच-विचार के बाद मेरा मन अब निम्नलिखित योजना पर डटा हुआ है। पहले मद्रास में धर्म-शिक्षा के लिए एक कॉलेज खोलना उचित होगा, फिर इसका कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ाना होगा। नवयुवकों को वेद तथा विभिन्न भाष्यों और दर्शनों की पूरी शिक्षा देनी होगी, इसमें संसार के अन्य धर्मों का ज्ञान भी शामिल रहेगा। साथ ही एक अंग्रेजी और एक देशी भाषा का पत्र निकालना होगा, जो उस विद्यालय के मुखपत्र होंगे।

पहला काम यही है, और छोटे-छोटे कामों से ही बड़े-बड़े काम पैदा हो जातें है। कई कारणों से मद्रास ही इस समय इस कार्य के लिए सबसे अच्छी जगह है। बम्बई में वही पुरानी जड़ता आ

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रही है। बंगाल में यह डर है कि अब वहाँ जैसा पाश्चात्य विचारों का मोह फैला हुआ है, उसे देखते हुए कहीं उसके विपरीत वैसी ही घोर प्रतिक्रिया न शुरू हो जाय। इस समय मद्रास ही जीवनयात्रा की प्राचीन तथा आधुनिक प्रणालियों के यथार्थ गुणों को ग्रहण करता हुआ मध्यम मार्ग का अनुसरण कर रहा है।

भारत के शिक्षित समाज से मैं इस बात पर सहमत हूँ कि समाज का आमूल परिवर्तन करना आवश्यक है। पर यह किया कैसे जाय? सुधारकों की सब कुछ नष्ट तक कर डालने की रीति व्यर्थ हो चुकी है। मेरी योजना यह है- हमने अतीत काल में कुछ बुरा नहीं किया, निश्चय ही नहीं किया। हमारा समाज खराब नहीं, बल्की अच्छा है। मैं केवल चाहता हूँ कि वह और भी अच्छा हो। हमें असत्य से सत्य तक, श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम तक पहुँचना है। मैं अपने देशवासियों से कहता हूँ कि अब तक जो तुमने किया, सो अच्छा किया, अब इस समय और भी अच्छा करने का मौका आ गया है।

जात-पाँत की ही बात लीजिए। संस्कृत में 'जाति' का अर्थ है वर्ग या श्रेणी विशेष। यह सृष्टि के मूल में ही विद्यमान है। विचित्रता अर्थात् जाति का अर्थ ही सृष्टि है। एकोऽहं बहुस्याम्- 'मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ', विभिन्न वेदों में इस प्रकार की बात पायी जाती है। सृष्टि के पूर्व एकत्व रहता है, सृष्टि हुई कि वैविध्य शुरू हुआ। अतः यदि यह विविधता समाप्त हो जाये, तो सृष्टि का ही लोप हो जायगा। जब तक कोई जाति शक्तिशाली और क्रियाशील रहेगी, तब तक वह विविधता अवश्य पैदा करेगी। ज्योंही उसका ऐसी विविधता का उत्पादन करना बन्द होता है, या बन्द कर दिया जाता है, त्योंही वह जाति नष्ट हो जाती है। जाति का मूल अर्थ था- प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रकृति को, अपने विशेषत्व को प्रकाशित करने की स्वाधीनता और यही अर्थ हजारों वर्षों तक प्रचलित भी रहा। आधुनिक शास्त्र-ग्रन्थों में भी जातियों का आपस में खाना-पीना निषिद्ध नहीं हुआ है; और न किसी प्राचीन ग्रन्थ में उनका आपस में ब्याह-शादी करना मना है। तो फिर भारत के अधःपतन का कारण क्या था?-जाति सम्बन्धी इस भाव का त्याग जैसे गीता कहती है-जाति नष्ट हुई कि संसार भी नष्ट हुआ। अब क्या यह सत्य प्रतीत होता है कि इस विविधता का नाश होते ही जगत् का भी नाश हो जायगा?

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
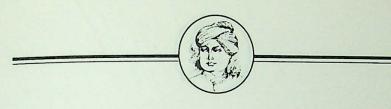
आजकल का वर्ण-विभाग यथार्थ में जाति नहीं है, बल्कि जाति की प्रगति में वह एक रुकावट ही है। वास्तव में इसने सच्ची जाति अथवा विविधता की स्वच्छन्द गति को रोक दिया है। कोई भी दृढ़मूल प्रथा अथवा किसी जातिविशेष का विशेष अधिकार अथवा किसी प्रकार का वंश-परम्परागत जातिविभाग उस सच्ची जाति की स्वच्छन्द गति को रोक देता है, और जब कभी कोई राष्ट्र इस अनन्त विविधता का सृजन करना छोड़ देता है, तब उसकी मृत्यु अनिवार्य हो जाती है। अतः मुझे अपने पर छोड़ देता है, तब उसकी मृत्यु अनिवार्य हो जाती है। अतः मुझे अपने देशवासियों से यही कहना है कि जाति-प्रथा उठा देने से ही भारत का पतन हुआ है। प्रत्येक दृढ़मूल आभिजात्य वर्ग अथवा विशेष अधिकार प्राप्त सम्प्रदाय जाति का घातक है-वह जाति नहीं है। जाति को स्वतन्त्रता दो, जाति की राह से प्रत्येक रोड़े को हटा दो, बस हमारा उत्थान होगा। अब यूरोप को देखो। ज्योंही वह जाति को पूर्ण स्वाधीनता देने में सफल हुआ, और अपनी-अपनी जाति के गठन में उसने प्रत्येक व्यक्ति की बाधाओं को हटा दिया, त्योंही वह उठ खड़ा हुआ। अमेरिका में यथार्थ जाति के विकास के लिए सबसे अधिक सुविधा है, और इसीलिए अमेरिका वाले बड़े हैं, प्रत्येक हिन्दू जानता है कि किसी लड़के या लड़की के जन्म लेते ही ज्योतिषी लोग उसकी जाति-निर्वाचन की चेष्टा करते हैं। वही असली जाति है हर व्यक्ति का व्यक्तित्व-ज्योतिष इसे स्वीकार करता है। और हम लोग केवल तभी उठ सकते हैं, जब इसे फिर से पूरी स्वतंत्रता दें। याद रखें कि इस विविधता का अर्थ वैषम्य नहीं है, और न कोई विशेषाधिकार ही।

यही मेरी कार्य-प्रणाली है- हिन्दुओं को यह दिखा देना कि उन्हें कुछ भी त्यागना नहीं पड़ेगा, केवल उन्हें ऋषियों द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा और सदियों की दासता के फलस्वरूप प्राप्त अपनी जड़ता को उखाड़ फेंकना होगा। हाँ, मुसलमानी अत्याचार के समय विवश होकर हमें अपनी प्रगति अवश्य रोक देना पड़ी थी, क्योंकि तब प्रगति की बात नहीं थी, तब जीने-मरने की समस्या थी। अब वह दबाव नहीं रहा अतः हमें आगे बढ़ना ही चाहिए-सर्वधर्मत्यागियों और मिशनरियों द्वारा बताये गये तोड़-फोड़ के रास्ते से नहीं। वरन् स्वयं के अपने भाव के अनुसार, स्वयं अपने पथ से हमारा जातीय प्रासाद अभी अधूरा ही है, इसीलिए सब कुछ भद्दा दीख पड़ रहा है। सदियों के

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अत्याचार के कारण हमें प्रासाद-निर्माण का कार्य छोड़ देना पड़ा था। अब निर्माण-कार्य पूरा कर लीजिए, बस सब कुछ अपनी अपनी जगह पर सजा हुआ सुन्दर दिखायी देगा। यही मेरी समस्त कार्य-योजना है। मैं इसका पूरा कायल हूँ। प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है भारत में वह धर्म है। उसे प्रबल बनाइए, बस दोनों ओर के अन्य स्रोत उसी के साथ-साथ चलेंगे। यही मेरी विचार-प्रणाली का एक पहलू है। आशा है, समय पाकर मैं अपने सब विचारों को प्रकट कर सकूँगा। पर इस समय में देखता हूँ कि इस देश (अमेरिका) में भी मेरा एक मिशन है। विशेषतः मुझे इस देश से और केवल यहीं से सहायता पाने की आशा है किन्तु अब तक अपने विचारों को फैलाने के सिवा मैं और कुछ न कर सका। अब मेरी इच्छा है कि भारत में भी एक ऐसी ही चेष्टा की जाय।

मैं कब तक भारत लौटूँगा, इसका मुझे पता नहीं। मैं प्रभु की प्रेरणा का दास हूँ, उन्हीं के हाथ का यंत्र हूँ।

इस संसार में धन की खोज में लगे हुए मैंने तुम्हीं को सबसे श्रेष्ठ रत्न पाया। हे प्रभो, मैं अपने को तुम पर निछावर करता हूँ।

प्रेम करने के लिए किसी को ढूँढते हुए एकमात्र तुम्हीं को मैंने प्रेमास्पद पाया। मैं अपने को तुम्हारे श्रीचरणों में निछावर करता हूँ।

प्रभु आपका सदा-सर्वदा कल्याण करें।

भवदीय

विवेकानन्द

'विवेक-ज्योति' वर्ष ३३ अंक ४ से साभार
रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम रायपुर द्वारा प्रकाशित

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अग्नि-मंत्र

(श्री ई.टी. स्टर्डी को लिखित)

१९, पश्चिम ३८वाँ रास्ता न्यूयार्क,
९ अगस्त, १८९५

प्रिय मित्र,

केवल यही उचित है कि मैं अपने कुछ विचार तुम्हारे सामने प्रकट करूँ। मैं पूर्ण विश्वास करता हूँ कि मानव-समाज में आजकल ऐसी ही खलबली फैली हुई है। यद्यपि ऐसी क्रान्ति अनेक छोटे छोटे विभागों में विभक्त दिखाई देती है, परन्तु मूलतः ये सब एक ही हैं, क्योंकि उनके पीछे जो कारण हैं, उनके रूप भी एक ही हैं, वह धार्मिक क्रान्ति, जिससे इस समय विचारवान् व्यक्ति दिन-प्रतिदिन अत्यधिक मात्रा में प्रभावित होते जा रहे हैं। उसका एक वैशिष्ट्य यह है कि उससे जितने क्षुद्र-क्षुद्र मतवाद उत्पन्न हो रहे हैं, वे सब उसी एक अद्वैत सत्ता की अनुभूति एवं अनुसन्धान में ही सचेष्ट हैं। भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक-स्तरों पर यह एक भाव दिखाई दे रहा है कि विभिन्न मतवाद-समूह क्रमशः अधिकाधिक उदार होते हुए उसी शाश्वत एकत्व की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस कारण वर्तमान काल के सभी आन्दोलन जाने या अनजाने में सर्वोत्तम आविष्कृत एकत्ववादी दर्शन के अर्थात् अद्वैत वेदान्त के प्रतिरूप हैं।

फिर यह भी सर्वदा देखा गया है कि प्रत्येक युग में इन समस्त विभिन्न मतवादों के संघर्ष के फलस्वरूप अन्त में एक ही मतवाद जीवित रहता है। अन्य सब तरंगें उसी मतवाद में विलीन होने के लिए एवं उसे एक वृहत् भावतरंग में परिणत करने के लिए ही उठती हैं, जो समाज को अप्रतिहत वेग के साथ प्लावित कर देता है।

इस समय भारत, अमेरिका एवं इंग्लैड में (जिन देशों का हाल मैं जानता हूँ) सैकड़ों ऐसे

मतवादों का संघर्ष चल रहा है। भारत में द्वैतवाद क्रमशः क्षीण हो रहा है, केवल अद्वैतवाद ही सब क्षेत्रों में प्रभावित है। अमेरिका में प्राधान्य-लाभ के लिए अनेक मतवादों के बीच संघर्ष उपस्थित हुआ है। ये सभी अल्प या अधिक मात्रा में अद्वैत भाव के प्रतिरूप हैं, और जो भाव-परम्परा जितनी अधिक तीव्र गति से फैल रही है, वह उतनी ही मात्रा में अन्य भावों की अपेक्षा अद्वैत वेदान्त के अधिक निकट प्रतीत होती है। अब मुझे यदि कुछ स्पष्ट दिखाई देता है, तो वह यह कि इनमें से एक ही भाव-परम्परा जीवित रहेगी एवं वह सबको निगलकर भविष्य में शक्तिमान् होगी। किन्तु वह कौन-सी भाव-प्रणाली होगी?

यदि हम इतिहास को देखें, तो विदित होगा कि जो विचारधारा सर्वश्रेष्ठ होगी, वही जीवित रहेगी, और चरित्र की अपेक्षा अन्य ऐसी कौन सी शक्ति है, जो जीने की योग्यता प्रदान कर सकती है? विचारशील मनुष्य जाति का भावी धर्म अद्वैत ही होगा, इसमें सन्देह नहीं। और सब सम्प्रदायों में उन्हीं की विजय होगी, जो अपने जीवन में सबसे अधिक चरित्र का उत्कर्ष दिखा सकेंगे-चाहे वे सम्प्रदाय कितनी ही दूर भविष्य में क्यों न जन्म लें।

एक मेरी निजी अनुभव की बात सुनो। जब मेरे गुरुदेव ने शरीर त्यागा था, तब हम लोग बारह निर्धन और अज्ञात नवयुवक थे। हमारे विरुद्ध अनेक शक्तिशाली संस्थाएँ थीं, जो हमारी सफलता के शैशवकाल में ही हमें नष्ट करने का भरसक प्रयत्न कर रही थीं। परन्तु श्री रामकृष्ण देव ने हमें एक बड़ा दान दिया था-वह यह कि केवल बातें ही न कर यथार्थ जीवन जीने की इच्छा आजीवन उद्योग और विरामहीन साधना के लिए अनुप्रेरणा। और आज सारा भारत मेरे गुरुदेव को जानता है और पूज्य मानता है और वे सत्य-समूह, जिनकी उन्होंने शिक्षा दी थी, अब दावानल के समान फैल रहे हैं। दस वर्ष हुए, उनका जन्मोत्सव मनाने के लिए मैं सौ मनुष्यों को भी इकट्ठा नहीं कर सकता था और पिछले वर्ष पचास सहस्त्र थे।

न संख्या-शक्ति, न धन, न पाण्डित्य, न वाक्चातुर्य, कुछ भी नहीं, बल्कि पवित्रता, शुद्ध जीवन, एक शब्द में अनुभूति, आत्म-साक्षात्कार को विजय मिलेगी। प्रत्येक देश में सिंह जैसी शक्तिमान् दस-बारह आत्माएँ होने दो, जिन्होंने अपने बन्धन तोड़ डाले जिन्होंने अनन्त का स्पर्श

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कर लिया है, जिनका चित्त ब्रह्मानुसन्धान में लीन हैं, जो न धन की चिन्ता करते है, न बल की, न नाम की और ये व्यक्ति ही संसार को हिला डालने के लिए पर्याप्त होंगे।

यही रहस्य है। योग प्रवर्तक पतंजलि कहते हैं, "जब मनुष्य समस्त अलौकिक दैवी शक्तियों के लोभ का त्याग करता है, तभी उसे धर्ममेध नामक समाधि प्राप्त होती है।" वह परमात्मा का दर्शन करता है, वह परमात्मा बन जाता है और दूसरों को तद्‌रूप बनने में सहायता करता है। मुझे इसी का प्रचार हो चुका है। लाखों पुस्तकें हैं, परन्तु हाय! कोई भी किंचित् अंश में प्रत्यक्ष आचरण नहीं करता।

सभाएँ और संस्थाएँ अपने आप उत्पन्न हो जाएँगी। क्या वहाँ ईर्ष्या हो सकती है, जहाँ ईर्ष्या करने की कोई वस्तु न हो? जो हमें हानि पहुँचाना चाहेंगे, ऐसे लोग असंख्य होंगे। परन्तु हमारे ही पक्ष में सत्य है, इसका क्या यह निश्चित प्रमाण नहीं है? जितना ही मेरा विरोध हुआ है, उतनी ही मेरी शक्ति का विकास हुआ है। राजाओं ने मुझे अनेक बार निमंत्रित किया और पूजा है। पुरोहितों और जनसाधारण ने मेरी निन्दा की है। परन्तु इससे क्या? सबको आशीर्वाद! वे सब तो मेरी स्वयं आत्मा हैं और क्या उन्होंने कमानीदार पटरे (spring-board) के समान शक्ति अधिकाधिक विकसित कर सके हैं?

इस महान् रहस्य का मैंने पता लगा लिया है-वह यह कि केवल धर्म की बातें करने वालों से मुझे कुछ भय नहीं है। और जो सत्यद्रष्टा महात्मा हैं, वे कभी किसी से वैर नहीं करते। वाचालों को वाचाल होने दो! वे इससे अधिक और कुछ नहीं जानते! उन्हें नाम, यश, धन, स्त्री से सन्तोष प्राप्त करने दो। और हम धर्मोपलब्धि, ब्रह्मलाभ एवं ब्रह्म होने के लिए ही दृढ़व्रत होंगे। हम आमरण एवं जन्म-जन्मान्तर में सत्य का ही सतत अनुसरण करेंगे। दूसरों के कहने पर हम तनिक भी ध्यान न दें और यदि आजन्म यत्न के बाद एक, केवल एक ही आत्मा संसार के बन्धनों को तोड़कर मुक्त हो सके, 'तो हमने अपना काम कर लिया।' हरि ओम्!

एक बात और। निस्सन्देह मुझे भारत से प्रेम है। परन्तु दिन-प्रतिदिन मेरी दृष्टि स्पष्टतर होती

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जा रही है। हमारे लिए भारत या इंग्लैण्ड या अमेरिका क्या हैं? हम उस प्रभु के दास हैं, जिसे अज्ञानी कहते हैं 'मनुष्य'। जो जड़ में पानी डालता है, वह क्या पूरे वृक्ष को नहीं सींचता?

सामाजिक, राजनीतिक और आध्यत्मिक कल्याण की एक ही नींव है-और वह है यह जानना कि मैं और मेरा भाई एक हैं'। यह सब देशों और सब जातियों के लिए सत्य है। और मैं यह कह सकता हूँ कि पश्चिमी लोग पूर्वियों से शीघ्र इसका अनुभव करेंगे-वे पूर्वीय जन, जिन्होंने इस नींव के निर्माण में तथा कुछ थोड़े से अनुभूति-सम्पन्न व्यक्तियों को उत्पन्न करने में प्रायः अपनी सारी शक्ति व्यय कर दी है।

आओ, हम नाम, यश और दूसरों पर शासन करने की इच्छा से रहित होकर काम करें। काम, क्रोध एवं लोभ-इस त्रिविध बन्धन से हम मुक्त हो जाएँ, और फिर सत्य हमारे साथ रहेगा!

भगवत्पदाश्रित
विवेकानन्द

-'विवेक-ज्योति' वर्ष : २७ अंक-२ से साभार

विश्व-मानवता के प्रेरक स्वामी विवेकानन्द

❑ कनक तिवारी

स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन के दो वर्ष से कुछ ज्यादा का समय रायपुर में गुजारा था अपने बाल्यकाल में। इतना समय अपनी जन्मस्थली या अपनी कार्यस्थली कलकत्ता को छोड़कर सारे विश्व में उन्होंने और कहीं नहीं दिया था। उससे भी बढ़कर मुझे रोमांच हुआ जब मैंने पढ़ा था छात्र जीवन में, मैं अब भी दावे के साथ नहीं कह सकता कि वह कौन सी जगह है, जबलपुर में आते हुए रायपुर में बैलगाड़ी में चलते हुए बालक विवेकानन्द को, नरेन्द्र को बल्कि, अचानक शाम के झुरमुट में, शाम के धुंधलके में आकाश में कोई दिव्य-ज्योति लहराती दिखाई पड़ी। इस तरह से तन्द्रा की स्थिति में वह आ गये और पहली बार उनको ईश्वर का अहसास हुआ, पहली बार उनको ईश्वर का दर्शन हुआ। पहली बार उनको किसी ऐसी शक्ति की प्रतीति हुई जिसने नरेन्द्र को विवेकानन्द में तब्दील कर दिया। वह स्थान भी छत्तीसगढ़ की धरती या उसके आसपास ही कहीं था। जो धरती नरेन्द्र को विवेकानन्द बना सकती है उस धरती को हम प्रणाम करते हैं और उस धरती का बेटा होने के नाते हम सबको गौरव है कि हम उस जगह पर, उस पवित्र जगह पर खड़े होकर स्वामी विवेकानन्द की आज याद करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द को तो मैं जानता नहीं। मैं विज्ञान का विद्यार्थी था लेकिन जिस उम्र में स्वामी विवेकानन्द यहाँ आये थे उससे तकरीबन थोड़ी ज्यादा उम्र में एक युवा संन्यासी हमारे बीच में आया था। उस समय उसका नाम तेज चैतन्य ब्रह्मचारी था। उस समय वह सफेद कपड़े पहनता था और उसके मन में एक ललक थी। उसके मन में एक उत्साह था कि रायपुर में विवेकानन्द का, उनकी स्मृति में एक यादगार जीवंत स्मारक हम बनायेंगे और विवेकानन्द ने जो सिलसिला शुरू किया है हिन्दुस्तान में आध्यात्मिकता के इतिहास में, बौद्धिक चेतना के इतिहास में, बल्कि बौद्धिक कर्म के इतिहास में, हम इस सिलसिले को आगे बढ़ायेंगे। रायपुर इसमें सहभागिता करेगा। एक कूड़ाघर जैसी जगह थी, जहाँ आज आश्रम बना हुआ है। पूरे शहर का शायद सबसे बड़ा कूड़ाघर था वह।

यही जगह सरकार की कृपा से हमको मिली और अक्सर ऐसा होता है। लेकिन आज रायपुर का विवेकानन्द आश्रम, रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित यह मकान संस्था, दक्षिण पूर्व मध्यप्रदेश की यह संस्था-आज हमारी आत्मिक शक्तियों का जिज्ञासा केन्द्र है।

आज आत्मानन्द जी की वजह से अणु की ऐसी ऊर्जायें यहाँ बिखर रही हैं कि हिन्दुस्तान का ऐसा कोई सांस्कृतिक क्रांति का अग्रदूत इस आश्रम को नहीं जानता हो या यहाँ नहीं आया हो, ऐसा कह नहीं सकता।

स्वामी आत्मानन्द इस इलाके की, बल्कि पूरे मध्यप्रदेश की, बल्कि पूरे केन्द्रीय हिन्दुस्तान की, सांस्कृतिक चेतना के सबसे बड़े प्रहरी थे। मैं तो एक साधारण सा आदमी हूँ। मैं धार्मिक आदमी नहीं हूँ। धर्म के इलाके में मेरी कोई बहुत बड़ी पहचान भी नहीं है। पैठ भी नहीं है। और शायद नियति और नीयत दोनों नहीं है। फिर भी मैं ईश्वर से सदैव लड़ता हूँ, जिन कुछ बुनियादी मुद्दों को लेकर, अपने जीवन के, उसमें एक मुद्दा यह भी शामिल होता है। हममें से जो पढ़े-लिखे लोग हैं, संवेदनशील लोग हैं, सोचने वाले लोग हैं, वे धर्म को धर्म की तरह अंगीकार भले न करें, धार्मिक आडम्बरों में भले न रहे, लेकिन ईश्वर से बातचीत तो हमको करने का अधिकार है। जब भी इस अधिकार का मैं इस्तेमाल करता हूँ, तीन-चार सवाल मेरे जीवन से सन्दर्भित हैं, चूंकि मैं बड़ा आदमी नहीं हूँ। हममें से कुछ लोग फलसफाई अन्दाज में अक्सर यह कहते हैं कि, यह तो नियति थी, हममें से कुछ लोग कहते हैं कि यह तो ईश्वरीय-विधान था। यह तो होना था। लेकिन स्वामी आत्मानन्द के साथ जो यांत्रिक दुर्घटना ईश्वर ने की, उस दुर्घटना के लिए मैं ईश्वर के साथ कभी समझौता नहीं कर पाया। यह ठीक है कि वह आज हमारे बीच में नहीं हैं और उनके आदर्श, उनकी आवाज, उनका व्यक्तित्व, उनकी प्रेरणा, उनका सम्बल, उनकी समूची याद हमारे साथ है। लेकिन भौतिक स्वरूप में स्वामी जी आज हमारे बीच में होते और उतने वर्ष तक तो होते जितने वर्ष तक आम तौर पर लोग होते हैं तो आज इस आश्रम की गतिविधियों की, आज छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक चेतना की, आज हम सबकी औकात जो है, उसमें काफी इजाफा होता, यह बात मैं मानता हूँ। आप मुझसे सहमत न हों तो मुझे उसकी चिन्ता भी नहीं है।

स्वामी आत्मानन्द ने हमारी पीढ़ी को, जिनमें मैं भी शामिल हूँ मेरे मित्र नरेन्द्र भी शामिल थे, हमारी बोली की तुतलाहट को साफ किया। हमको पढ़ना-लिखना सिखाया। हम इतने छोटे सौभाग्यशाली बच्चे तो नहीं थे जो उठकर चले गए हमारे बीच में से। उस समय लेकिन महाविद्यालय के दिनों से सही, जो सम्पर्क उनका हमारी पीढ़ी से हुआ, वह एक धरोहर के रूप में हम सदैव याद रखेंगे और इसीलिए यदि कोई भौतिक रूप से हमारे बीच में से चला जाता है तब उसका जन्मदिन भी पुण्यतिथि की तरह हम याद करते हैं। वह ख़ुशी हमें नहीं होती प्रकट तौर पर, हम जश्न नहीं मानते, जो आमतौर पर ९० बरस के आदमी के जीवन के भी मनाये जाते हैं। आत्मानन्द जी की याद, एक जरूरी हिस्से की तरह जिंदगी में हमको सदैव सालती रहेगी। उस याद को हमसे कोई अलग नहीं कर सकता। हम जब तक जीवित रहेंगे, हमारी संवेदनशीलता सदैव ईश्वर से पूछती रहेगी कि स्वामी जी अंततः कहां हैं? (रुंधे कंठ से) अध्यक्ष जी, आप मुझे क्षमा करेंगे मैं भावुक होने आपके बीच में नहीं आया था। अगर ये ओमप्रकाश वर्मा ने आवाज न सुनवाई होती, तो शायद उनकी याद में इतनी तीक्ष्णता नहीं आती।

मैं जिस तरह स्वामी आत्मानन्द को याद करता हूँ उसका एक और भी कारण है कि हमारी पीढ़ी ने तो विवेकानन्द के दर्शन नहीं किये। हम उनके माध्यम से विवेकानन्द की याद करते हैं। मुझे याद है रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम में और उसके पहले जब यह आश्रम नहीं बना था तब, मेरे घर में, उनके घर में संन्यासकाल का जो पूर्व घर है, भिलाई में, मोटर गाड़ियों में, रेलों में, दिल्ली में जाने कहां-कहां जब भी मैं उनसे मिलता था, इसके पहले कि मैं दो-चार शब्द स्वामी विवेकानन्द की विश्व मानवता के सम्बन्ध में कहूँ, एक बात और कह देना चाहता हूँ क्योंकि आज आत्मानन्द जी का जन्मदिन है, जब आपने मुझे बुलाया। हममें से बहुत से लोग, संयत थे उनके साथ, अनुशासित लोग थे, शायद अनुशासित लोगों में मेरी भी गिनती होती होगी। बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि स्वामी आत्मानन्द से मैं उन विषयों पर भी चर्चा करता था, जो धर्म के एक आदमी के लिए शायद जिन पर मुमानियत लगती है ऐसा कोई ज्ञान का विषय नहीं था जिस पर बात न की हो और स्वामी जी ने मेरी जिज्ञासाओं का समाधान नहीं किया ऐसा कभी हुआ नहीं। और इसलिए जब मैंने

विवेकानन्द साहित्य को पढ़ा, श्री रामकृष्णदेव के जीवन को पढ़ा, और वेदान्त साहित्य की जितनी बातें मुझे समझ में आयीं क्योंकि में संस्कृत पढ़ा-लिखा विद्यार्थी नहीं हूँ क्योंकि बंगला मैं पढ़ नहीं सकता। केवल हिन्दी के माध्यम से जो मैं पढ़ सकता था। जब से मैं उनका विद्यार्थी, जब से उनका छोटा भाई था, जब से आश्रम परिवार का एक उनका अनुयायी था, तब से विवेकानन्द को लेकर मेरे दिमाग में बहुत सी जिज्ञासाएं रही हैं।

मैं कोई व्यवस्थित भाषण आपके बीच में नहीं दे सकता। मैं ऐसी बहुत सी मान्यताओं को नहीं मानता जो स्वामी विवेकानन्द के बारे में विद्वान् कहते हैं। विवेकानन्द के बारे में मेरी समझ है। उस समझ में आज, अवसर का लाभ उठाकर कुछ थोपने आया हूँ आपके जेहन के ऊपर। आप इसको स्वीकार न करें, या स्वीकार करें तो आपका बड़प्पन है। लेकिन स्वामी विवेकानन्द के बारे में जो सतही बातें लोग कहते हैं स्वामी विवेकानन्द के बारे में पारम्परिक बातें लोग कहते हैं, जो औपचारिक बातें कहते हैं, विवेकानन्द का ऐसा व्यक्तित्व नहीं था। कुछ ऐसी बातें हमारे बीच में हमको मालूम होनी चाहिए, कुछ ऐसी बातें हमको ढूँढनी चाहिए। हम अपने विचारों को कहीं न कहीं हलाकान करें और जानने की कोशिश करें कि उनके जीवन का अर्थ क्या था? और इसीलिए जब आपने मुझसे कहा, आपने मुझे आदेश दिया, तो मैं विवेकानन्द को एक हिन्दू साधु के रूप में स्वीकार करने को कभी तैयार नहीं रहा। मैं विवेकानन्द को भारत माता के एक सपूत के रूप में भी केवल स्वीकार करने को कभी तैयार नहीं हूँ। मैं विवेकानन्द को विश्व मानव मानता हूँ। मैं विवेकानन्द को शायद इस दुनिया का सबसे बड़ा आदमी मानता हूँ, इस सदी का, जो मेरे आसपास की सदी है। और इसलिए इस विषय से, जो विषय आपने मुझे दिया है, मेरे मन की वह जिज्ञासा शांत होती है, विवेकानन्द को अन्दर तक बैठकर खोजने की।

राम, कृष्ण बुद्ध, श्री रामकृष्णदेव और विवेकानन्द ये भारतीय संस्कृति की पांच बड़ी आत्माएँ हैं, पांच हमारे बड़े विचारक हैं। ये हमारे हिन्दुस्तान के आम-आदमी की पंचायत के भी पाँच पंच हैं। और यही एक तरह से सारे हिन्दुस्तान की, बल्कि सारी दुनिया की पंचक्रोषी परिक्रमा करते हैं। तब इस देश की एक महान नदी हुई है गंगा, उसके साथ सरयू, उस इलाके के बेटे हैं, जो कर्म

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

और मर्यादा की नदी है। राम इसीलिए अपने जीवन में कर्म और मर्यादाओं से बंधे रहे। कृष्ण इस देश में, एक और नदी हुई है यमुना और उसके साथ चम्बल और केन वगैरह, उनके बेटे हैं जो रस की नदी हैं, प्रेम की नदी हैं और इसीलिए कृष्ण कर्म से ज्यादा प्रेम के देवता के रूप में जाने जाते हैं। यह दोनों नदियाँ जब चलकर, गंगा और यमुना, अनन्त सागर, भविष्य के महासागर, अपने अस्तित्व के अंतिम पड़ाव पर पहुंचती हैं, तब हुबली में परिवर्तित होती हैं, और वहाँ श्री रामकृष्णदेव का जन्म होता है, वहाँ उनकी कार्यस्थली होती है और उनका नाम भी अनायास रामकृष्ण नहीं है। गंगा और यमुना का पानी मिलकर, कर्म और प्रेम का पानी मिलकर, मर्यादा और उन्मुक्तता का पानी मिलकर जब इतिहास के बियाबान में समय के आयाम में बढ़ेगा और भविष्य के महासागर की गर्त में, उसकी गोद में जाने को बेताब होगा, तो वहाँ अगर किसी देवता का जन्म होगा तो उसका नाम श्री रामकृष्ण देव ही हो सकता है और कुछ नहीं हो सकता।

बुद्ध हमारे एकांगी जीवन में वैचारिक विश्वविद्यालय के, हिन्दुस्तान के इतिहास के, बल्कि धरती के इतिहास के, सबसे बड़े देवता गौतम बुद्ध वो भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक अस्मिता के, राजदूत बनकर पूरब की तरफ गये और वहीं विवेकानन्द हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक बनकर पश्चिम की तरफ गये। ये पांच जीवंत नाम, ये पांच आवश्यक हस्ताक्षर, हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक धरोहर एक के सबसे बड़े प्रहरी हैं। इनसे हटकर हम हिन्दुस्तान को खोना या इनसे बढ़कर हिन्दुस्तान को अहमियत प्रदान करना ऐसा कोई दुश्कर कार्य अगर हम करें तो शायद हम उसमें सफल नहीं होंगे ।

विवेकानन्द के संबंध में, स्वामी विवेकानन्द के संबंध में बहुत सी बातें कही जाती हैं। लेकिन उनके जीवन में एक पड़ाव आया, ११ सितम्बर १८९३ को। तब तक भी विवेकानन्द इस देश में १८६३ में पैदा होने वाले विवेकानन्द ३० बरस के युवा संन्यासी थे। हिन्दुस्तान में कोई उनको जानता नहीं था। एक गुमनाम आदमी की तरह वे यहाँ-वहाँ घूमते रहे। कुछ थोड़े से लोग उनको जानते थे। लेकिन ११ सितम्बर १८९३ को धरती के इतिहास में, इस सदी के इतिहास में एक बहुत बड़ी घटना हुई। शिकागो का धर्म सम्मेलन, इसमें जो विवेकानन्द की आवाज थी, उसमें जो

विवेकानन्द का छोटा सा भाषण था। वह आज तक दुनिया के लोगों को याद है और वही भाषण हमारी बीसवीं शताब्दी की बुनियाद बना। आखिर उसमें क्या खास बात थी? मुझे कभी-कभी बहुत अच्छा लगता है। आप जानते हैं वो क्यों कार्यक्रम हुआ था। वह धार्मिक प्रयोजनों से कार्यक्रम नहीं हुआ था? कोलम्बस ने अमेरिका को खोजा था, ४०० बरस पहले, उस तारीख से उसका एक जश्न, उसका एक आयोजन वहाँ मनाया गया। अमेरिका को खोजे जाने का ४०० बरस का आयोजन। उस आयोजन में तमाम बातें थी तमाम तरह की प्रदर्शनियाँ थीं, तमाम तरह की और बातें थीं, और इसके एक हिस्से में शिकागो का वह धर्म सम्मेलन एक हाल में हुआ था और उस पूरे आयोजन का श्रेय किसी पादरी को नहीं था ईसाईयत के किसी बड़े नेता को नहीं था, किसी पण्डित, मुल्ला और सिनेगाग को मानने वाले, यहूदी धर्म को मानने वाले किसी बुजुर्ग विद्वान् का नहीं था उस पूरे धर्म का आयोजक एक वकील था। वह शिकागो का सबसे बड़ा फौजदारी का वकील था। फौजदारी के वकील किस तरह रूपया कमाते हैं, आप सुनकर जानते हैं। मैं भुगतकर जानता हूँ। उस वकील ने न केवल वह आयोजन किया, बल्कि उस आयोजन की अध्यक्षता की। स्वामी जी, मैं स्वामी विवेकानन्द की याद में इसलिए भी कई बार अकेले बैठकर गुनगुनाता रहता हूँ कि धरती के इतिहास पर अगर कोई महामानव हुआ है, जिसने फौजदारी के वकील की तारीफ की है तो केवल स्वामी विवेकानन्द थे। इसलिए मुझे अच्छा लगा कि मैं स्वामी विवेकानन्द को नजदीक से जानने की कोशिश करूं और अपने वहां, अमरीका जाने के बाद जो उन्होंने कहा हिन्दुस्तान की धरती पर आकर श्री बोनी के बारे में कहा, जो उस वकील का नाम था कि कितना महामानव था वह, कितना बड़ा काम उसने किया, और किस शालीनता के साथ, किस विद्वत्ता के साथ, किस महानता के साथ, जिसने धर्म संसद की अध्यक्षता भी की, वह विवेकानन्द थे।

दूसरी बुनियादी बात आपको मालूम होनी चाहिए कि स्वामी विवेकानन्द वहाँ उस सम्मेलन में भाषण देने नहीं गये थे। उन्हें वहाँ का निमंत्रण भी नहीं था। ३० साल के नौजवान अज्ञात संन्यासी को निमंत्रण कौन देता भला? वह तो वहाँ किसी तरह घुस पाये थे उस सम्मेलन में और सूची में उनका नाम लिखा गया। श्री पाण्डेय तो आज भी अध्यापक हैं और दो अध्यापक उनके साथ और बैठे हैं मंच पर। लेकिन मैं भी टूटा-फूटा जैसा भी हूँ थोड़े समय पहले अध्यापक था। तब मुझे लगा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कि मेरे जीवन में एक और अच्छा काम हुआ। विवेकानन्द को विवेकानन्द बनाने में वकील के अलावा एक अध्यापक ने भी योगदान किया और उसके कहने से उन्होंने भाषण दिया। विवेकानन्द वहाँ हिन्दुस्तान के लिए पैसा मांगने गये थे। इस देश के गरीब आदमियों के लिए रोटी का इंतजाम करने गये थे। उस जमाने में उनको पता था कि अमरीका एक बहु धनी देश है। मेरा देश बहुत गरीब है। गरीबों के लिए रोटी मांगने वह वहां पर गये थे। बस भाषण तो भाषण है। पहली बार मुझे याद है शायद १९६५ की बात होगी। स्वामी आत्मानन्द जी से स्वामी विवेकानन्द के बारे में ३० साल पहले मैंने यही सवाल किया था, कि जो आदमी वहां भाषण देने नहीं गया था, जिस आदमी को हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि की हैसियत से धर्म संसद में हिस्सेदारी करने का अवसर भी नहीं मिला था, जो आदमी हिन्दुस्तान के लिए रोटी मांगने का इंतजाम वहां करने गया था, वह केवल धार्मिक नेता कैसे हो सकता है, वह केवल आध्यात्मिक नेता कैसे हो सकते हैं? हम उस परम्परा की कड़ी में, इस देश के महान् संत, जिन्होंने हमारी आत्मा की आजादी के लिए अपने जीवन का सर्वस्व न्यौछावर किया, उनमें से तो एक मानें। लेकिन केवल उतना ही क्यों मानें? और इसलिए मैं उस संधिकाल में खड़ा हूँ, तर्कशास्त्र के जंगलों के बीच, जहाँ मैं विवेकानन्द को, हिन्दुस्तान के इतिहास का एक ऐसा आदमी मानता हूँ, जिसकी मिसाल ढूंढना, जिसका समानान्तर ढूँढना आपके लिए सम्भव नहीं होगा।

मैं पहली बुनियादी स्थापना करना चाहता हूँ, क्षमा करेंगे आप इस विद्वत् सभा में आमतौर पर जिस तरह विवेकानन्द की याद करते हैं, अभिभूत होकर। आमतौर पर जिस तरह हम उनके लिए विशेषणों का उपयोग करते हैं, अपनी जान बचाने के लिए। जब उन्हें हम ठीक से पहचानते नहीं है। हम किसी भी व्यक्ति को अगर ठीक से पहचानते हैं, तो पहले कहें कि भला आदमी है और अंत में कहें कि महान् आदमी है। इससे वह आदमी अच्छी तरह समझ जाता है कि वह मुझे पहचानते नहीं हैं लेकिन आप अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं। मैं विवेकानन्द के सन्दर्भ में पिण्ड छुड़ाना नहीं चाहता। मैं इस बात को सैद्धान्तिक तौर पर, इस बात को कन्विक्शन के आधार पर, सदा मानता रहा हूँ कि इस देश के इतिहास में अगर कहीं दस बरस मुझे दिये जायें इस देश के जाती इतिहास में, तो मैं १८६१ से १८७० के बीच का दशक चुनूंगा। जिस दशक में तीन नाम इस देश में पैदा हुए। एक हुए रवीन्द्रनाथ टैगोर, एक महात्मा गांधी और एक हुए विवेकानन्द। इस दशक के ये तीन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
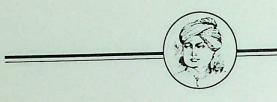
हमारे हस्ताक्षर हैं। मैं अक्सर कहता हूँ, हमारे हिन्दी साहित्य के कुछ विद्वान् यहाँ बैठे हैं। यदि विवेकानन्द ज्ञान की गंगा, महात्मा गांधी कर्म की यमुना की तरह हैं, तो सरस्वती के पुत्र की तरह टैगोर हैं यह त्रिवेणी हमारे देश की हमको सदैव याद रखनी चाहिए और इसलिए जब दो-तीन महापुरुषों के बारे में हम एक साथ सोचें जिन्होंने हिन्दुस्तान के मानस को उत्प्रेरित किया है और आज बीसवीं शताब्दी में यह हमको लेकर आये और उनके विचारों को हम पढ़ें तो विवेकानन्द की सही पहचान होती है।

विवेकानन्द इस देश के पहले विचारक थे जिन्हें, क्षमा करेंगे, मैं इसी तरह की भाषा में बचपन से (क्योंकि आप भी मेरे बड़े भाई हैं) बात करने का आदी रहा हूँ। इसको कहते हैं इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट का लाइसेंस अगर किसी के पास था, आध्यात्मिकता के ज्ञान को लाने ले जाने का हिन्दुस्तान के इतिहास में विवेकानन्द पहले आदमी थे। इस देश में से कोई भी आदमी हिन्दुस्तान के ज्ञान को लेकर बाहर नहीं गया। केवल बुद्ध गये थे, मैंने आपसे कहा। लेकिन मुझे बताइये, दर्शन शास्त्र के अध्यापक भी यहाँ बैठे हैं, कि बुद्ध पूरब के देशों में गये, और हिन्दुस्तान के बौद्धिक मतवाद का उन्होंने प्रचार भी किया, बदले में वहां से क्या लेकर आये? स्वामी विवेकानन्द आत्मा की, आदमी की जिज्ञासा के पहले देवदूत थे, जो हिन्दुस्तान से उसका दर्शन, उसकी आध्यात्मिकता लेकर अमरीका गये, इंग्लैंड गये और बदले में, ईसाईयत के बदले में इस्लाम के जितने भी अच्छे तत्व थे, उनको साथ लेकर आये, और उन्होंने धरती की छाती पर वह बिरवा रोपा और यह कहा कि ईसाईयत में बहुत सी अच्छी बातें हैं। यह कहा कि इस्लाम में बहुत अच्छी सी बाते हैं। यह कहा कि पश्चिम में बहुत सी अच्छी बातें हैं जिन बातों को लेकर हमको चलना चाहिए। कहां हमने आज तक किसी धार्मिक साधु को देखा है, किसी जमशेदजी टाटा जैसे उद्योगपति से कहते कि आध्यात्मिकता की बातें छोड़ो, अगर इस देश की सेवा तुम करना चाहते हो तो जो सेवा मैं कर रहा हूँ उससे ज्यादा बड़ी सेवा तो तब होगी जब विज्ञान का कोई संस्थान यहां पर खोलो, इंजीनियरिंग का कोई संस्थान खोलो जिसमें इस देश के बच्चे पढ़े और इस देश की गरीबी को दूर करने का काम करें। यह विवेकानन्द के जीवन का एक ऐसा विशिष्ट योगदान हमारी संस्कृति को बनाने में है कि एक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तरह की चीज़ लेकर वहाँ वो गये और दूसरी तरह की चीज साथ में लेकर के लौटकर आये और जब वह गये और आये तब वह यहाँ पर रसायन शास्त्र के विद्यार्थी भी बैठे हैं, केवल यौगिक या मिश्रण उन्होंने नहीं बनाया, एक तरह से अमलगम बनाया उन दोनों चीजों को मिलाकर और इसलिए मैं विवेकानन्द को जो केवल भारतीय मानने के पक्षधर हैं उनसे असहमत होता हूँ। विवेकानन्द के हिन्दुस्तान की, भारतीयता की, पहचान होने के बावजूद धरती की नब्ज उनके पास थी। पूरी की पूरी धरती के लिए वे एक विश्व-चेतना के प्रतिनिधि थे। यह उनकी सबसे बड़ी बुनियादी पहचान है। इस बात का अहसास, इस बात का घमण्ड हिन्दुस्तान के अगर किसी महामानव को नहीं हो सकता तो पश्चिम के महामानव को भी नहीं हो सकता।

विवेकानन्द के जीवन की एक दूसरी बड़ी समस्या, मैं उसको समस्या ही कहूँगा, जिससे हममें से बहुत से लोग परिचित नहीं है। आप जानते हैं, मैंने पहले जिस बात को कहा है। इस देश की जो आजादी की लड़ाई है। उसका जो सूरज उगा, उसके उषाकाल तो विवेकानन्द थे। यह बात हम बड़े गौरव से कहते हैं। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई आदमी नहीं था। इस देश का कोई भी महान् जननेता नहीं था, जो विवेकानन्द से प्रभावित नहीं था। महात्मा गांधी उनसे मिलने बेलूर मठ गये थे, लेकिन स्वामी जी की बीमारी की वजह से उनसे मिल नहीं पाए। लोकमान्य तिलक तो उनके आतिथेय थे, इस बात को आप अच्छी तरह से जानते हैं। स्वामी रामतीर्थ, जिन्होंने नव वेदान्त की गर्जना जापान, मिस्र और अमेरिका में जाकर की थी, वह विवेकानन्द के भक्त थे। स्वामी सत्यदेव उनके भक्त थे। सुभाष बाबू के तो वह आध्यात्मिक गुरु थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है "यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़े, उनमें सब कुछ विधेयात्मक है, निषेधात्मक कुछ भी नहीं।" जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा में विवेकानन्द की याद की है। राजगोपालाचारी ने तो यहाँ तक कहा है कि "विवेकानन्द अगर नहीं होते तो न तो कोई हिन्दू धर्म को बचा सकता था और न हिन्दुस्तान को आजाद करा सकता था।" ऐसा इस देश का कोई भी महान् राजनीतिक नेता नहीं हुआ है जो स्वामी जी से प्रभावित नहीं था लेकिन यह विवेकानन्द के जीवन की बुनियादी समस्या नहीं है। आप मुझे समझाइये, और नहीं तो मैं आपको समझाने की कोशिश करता हूँ। आजादी की लड़ाई के सन्दर्भ में भी विश्व-मानवता का अगर कोई सन्देश दे सकता था उस जमाने में, जो स्वामी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द ने दिया। उन्होंने एक तरफ तो अपने भाई महेन्द्रनाथ से कहा "कांग्रेस जो कुछ कर रही है केवल उससे आजादी नहीं मिलेगी, तुमको आजादी का संघर्ष लड़ना चाहिए। उसमें छोटे-छोटे आदमियो की भागीदारी भी होनी चाहिए। लेकिन मैं समझाता हूं आजादी की लड़ाई लड़ना एक बेआयामी काम है। जनता को तैयार करो और आतताई से लड़ो।" महात्मा गांधी ने छोटा काम नहीं किया, हमारे महान् नेताओं ने आजादी दिलाने का जो उपक्रम उठाया, वह छोटा काम नहीं था। लेकिन आजादी का मकसद, आजादी का उद्देश्य हासिल करना एक बेआयामी काम है। विवेकानन्द ने एक नई बात उस समय कही और यह कही वेदान्त के सन्दर्भ में आजादी की बात "आज प्रत्येक आदमी के उद्देश्य की, प्रत्येक आदमी की दुनिया का है, इस पूरी धरती की है उसमें एक महामानव निवास करता है। यही हमारे वेदान्त का सन्देश है और उसकी जो नैसर्गिक आध्यात्मिकता एक आदमी की है, उसको मिलाकर के अगर हम चलें तो इस धरती का हम कल्याण कर सकते हैं, जिस जगह हमने धरती को पाया, उससे अच्छी जगह पर छोड़ सकते हैं।" विवेकानन्द ने कहा कि यूरोप का आदमी भी उतना ही महान् है, जितना अमरीका का आदमी भी उतना ही महान् है, जितना हिन्दुस्तान का आदमी महान् है। जिस दिन उसके अन्दर यह नैसर्गिक आध्यात्मिकता उपजेगी, पैदा हो जाएगी, उस दिन वह किसी देश को गुलाम नहीं रख सकता। उस दिन वह गुलाम रहने वाला देश भी गुलाम नहीं रख सकता। इसलिए आजादी की राजनीतिक लड़ाई लड़ना एक छोटा काम है। यह छोटा काम सन्दर्भ के हिसाब से, तुलना के हिसाब से रहा है। यह विवेकानन्द थे कि जिन्होंने एक सांसारिक व्यक्ति नहीं होने के बावजूद हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का बिगुल तो फूंका। उसके लिए लोगों को तैयार तो किया, अंग्रेज के मन में हिन्दुस्तान के लिए और हिन्दुस्तानी के मन में अंग्रेज के लिए, एक देश की दूसरे देश के लिए, एक जाति की दूसरी जाति के लिए, जो घृणा या नफरत की बात थी उसको खत्म करके उस बुनियादी बात को खत्म करके, आध्यात्मिकता के संघर्ष के रास्ते चलते आजादी की लड़ाई की बात की। यह योगदान केवल स्वामी विवेकानन्द का है। हिन्दुस्तान की राजनीति में और किसी व्यक्ति का ऐसा योगदान न तो सम्भव है और न मैंने देखा है।

स्वामी जी के जीवन में और भी बहुत सी बातें हैं, जिनकी खोज पड़ताल की जानी चाहिए। मैं एक बात आपसे संक्षेप में और कहना चाहता हूँ, हो सकता है कि इस बात के लिए कुछ लोग

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जाने के बाद मेरी आलोचना भी करें, इस अर्थ में कि मैंने बहुत सतही बात कही थी। हमने राम को भी देखा, अपनी कल्पना में पढ़कर। हमने कृष्ण के बारे में भी सुना है। हमने बुद्ध को भी समझा और परखने की कोशिश की है। वह तो बहुत पहले के लोग थे। विवेकानन्द के आसपास भी कुछ लोगों को हमने देखा है। इस देश में एक खास बात हुई है। जब कभी हमने किसी राजा के दरबार में स्त्री की इज्जत को लुटते देखा है, जब कभी अग्नि-परीक्षा में सफल होने के बाद भी किसी राजरानी को निर्वासित होते देखा है, जब कभी भी हमने अपने देश के इतिहास में किसी और बड़ी चुनौती को देखा है, तो उस चुनौती से सम्बद्ध जो महानायक होता है या तो वह तटस्थ हो जाता है, या वह चमत्कार दिखाने लगता है। जाहिर है कृष्ण ने द्रौपदी के साथ जो किया वह अजब किस्म में नहीं आता। जाहिर है बुद्ध ने भी अपने जीवन में तमाम तरह के चमत्कार किये। आज भी जो कुछ लोग जीवित हैं, क्या स्वामी विवेकानन्द के समय थे, हमने उनको भी चुटकियों से भभूत निकालते देखा है और तरह-तरह के चमत्कार करते देखा सिर्फ़ इसलिए कि तर्क को कहीं बोझ बनाया जाये। जिज्ञासा को, कहीं उसका गला घोंट दिया जाये।

विवेकानन्द हिन्दुस्तान के धार्मिक वांग्मय के, उस वातायन के शायद पहले और आखरी संन्यासी थे जिन्होंने चमत्कारों का सहारा कभी नहीं लिया। और इसलिए आदमी की जिज्ञासा एक आदिम जिज्ञासा है, एक बुनियादी जिज्ञासा है। मैं आज पैदा हुआ, बीमार पडूंगा, बूढ़ा होऊंगा और मरूंगा, उसके बाद क्या? यह तो बुद्ध के जीवन के तीन सवाल थे। यही तो हममें से प्रत्येक के जीवन के सवाल हैं। सिद्धार्थ ने इन सवालों का जवाब पाया तो बुद्ध हो गये। हम आप इन सवालों का जवाब नहीं पाते, इसलिए जो हैं वही हैं। लेकिन यह केवल विवेकानन्द थे, २०वीं सदी की सुबह के आते-आते, जिन्होंने चमत्कारों का सहारा नहीं लिया। पूरा विवेकानन्द साहित्य पढ़ जाइये आप। एक भी वाक्य मुझे बता दीजिए कि किसी भी एक समस्या के लिए उन्होंने किसी चमत्कार का सहारा लिया हो। एक भी बुनियादी सवाल हिन्दुस्तान का या आदमी के बारे में बतलाइये, मनुष्य के बारे में बताइये जहाँ उन्होंने तर्कशास्त्र का गला घोंटने की कोशिश की हो। और यह जो विवेकानन्द का विश्व-मानवता के विकास में योगदान है। वह अमरीका गये, ईसाईयत पर सवाल उनसे पूछे गये। हिन्दुस्तान के धर्म पर तो सवाल पूछे गये और एक साथ बैठे एक विज्ञानवेत्ता, एक अर्थशास्त्र के

प्राध्यापक, एक राजनीतिक विज्ञान के प्राध्यापक और तमाम तरह के और धार्मिक विषयों से संबंधित, प्रोजेस्टेंटर्स भी रोमन कैथोलिक्स भी, प्रेसबिटेरियन चर्च को मानने वाले और तमाम तरह के लोग और २०-२० विद्वानों को विवेकानन्द ने बीस मिनट से दो घंटे के शास्त्रार्थ में पराजित बार-बार किया। अमरीका की धरती पर उनको निर्णायत्मक ढंग से पराजित किया लेकिन उनमें पराजय का कड़वापन नहीं आने दिया और यह स्मरण मैं समझता हूँ कि धरती के इतिहास पर, जब तक हम याद करेंगे उनको तब तक रहेगा।

एक और बात मैं कहना चाहता हूँ आपसे, हममें से बहुत से लोग नकली लोग हैं, अधिकांश, वह लोग भी धर्म प्रचार करते हैं। हम सब किसी भूखे आदमी को देखते हैं, उसकी रोटी से हमारा कोई सरोकार नहीं होता। हमने इस देश में साधुओं को देखा है, औसत दर्जे के साधुओं को, कि वो किसी भी आर्थिक समस्या से जूझने की कोशिश नहीं करते। हमने बड़े-बड़े विद्वानों को देखा है, शायद गरीब थे। महाभारत में कौरवों-पाण्डवों के गुरु के पुत्र को, ऐसा पढ़ा है कि दूध नहीं मिलने से, खड़िया घोलकर पिलाया जाता था। गरीबी तब भी रही होगी शायद राम के काल में रामराज्य रहा होगा। हो सकता है कि गरीब उस समय भी रहे हों। गरीबों का इतिहास लिखता कौन है? वैसे स्वामी विवेकानन्द पहले व्यक्ति थे, पहले संन्यासी थे, चेतना के इतिहास के, जिन्होंने आर्थिक सवालों के अन्दर अध्यात्म को डालने की कोशिश की। मैं एक आदमी से बहुत प्रभावित हूँ स्वामी जी, उसका नाम है कार्ल मार्क्स। कार्ल मार्क्स को मैं धरती के इतिहास पर कभी अप्रासंगिक नहीं मानूंगा। मार्क्स की मान्यताएं टूट रही हैं। उसकी सरहदें टूटी हैं, रूस में और जगह। लेकिन एक गरीब आदमी के जीवन के लिए रोटी को एटम बनाकर गैरबराबरी के खिलाफ, जो संघर्ष का बिगुल मार्क्स ने बजाया है, वह हिन्दुस्तान के या दुनिया के, किसी महामानव को बजाते मैंने नहीं देखा, मैं उससे बहुत अभिभूत हूँ। लेकिन आप जानते हैं कार्ल मार्क्स और विवेकानन्द में गहरी समानता है। श्री रामकृष्णदेव शायद अंतिम साधु हैं, कि जिन्होंने रोटी के सवाल को, नारे के लिए इस्तेमाल नहीं किया जो हम लोग हर पांच साल में करते हैं। उन्होंने आध्यात्मिकता और रोटी के सवाल को सम्पृक्त किया। मार्क्स की और उनकी दिशा में फर्क था।
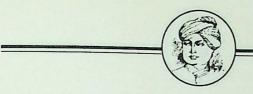
मैंने पिछली बार जो आपसे कहा था और बार-बार कहता हूँ। मुझे इस बात में पक्का यकीन है कि विवेकानन्द ने मार्क्स को नहीं पढ़ा था या पढ़ा होगा तो बहुत कम पढ़ा होगा। लेकिन मार्क्स ने जो द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सत्य की स्थापना की है, विवेकानन्द की, उनकी जो स्थापना की है, वह पूरी की पूरी उनसे हटकर है। मार्क्स हममें से हर आदमी को अंकगणित की इकाई समझता था। वह हमको मिलाकर, हम सबको मिलाकर गुणात्मक परिवर्तन करके एक तरह से क्रांति के उन सिपाहियों के रूप में हमको तब्दील करना चाहता था, यह मार्क्स की थ्योरी है। विवेकानन्द इसके खिलाफ हर आदमी के अन्दर एक आध्यात्मिकता के महामानव के दर्शन करते थे, और उसको जागृत करके एक सम्पूर्ण क्रांति की बात करते थे। वह क्रांति भी रोटी से जुड़ी हुई होनी चाहिए थी, यह उनकी समझ थी। स्वामी जी, मुझे कभी-कभी लगता है, मैंने इस विषय पर भी सोचा कि गरीब कार्ल मार्क्स को यह बात क्यों समझ में नहीं आई, जो विवेकानन्द को समझ में आई। और यही कारण है कि आज यू.एस.एस.आर. टूट गया। यही कारण है कि धरती पर कम्युनिज़्म एक तरह से खात्मे की तरह चल रहा है, और यही संयोगवश कारण है और हिन्दुस्तान के लिए सौभाग्यवश कारण है कि पेइचिंग और मास्को के विश्वविद्यालयों में आज भी विवेकानन्द पर शोध कार्य जारी है, जहाँ मार्क्स की सीमायें टूट रही हैं। तब मुझे उसका उत्तर नजर आता है।

एक बात की तरफ मैंने ध्यान किया है, अधिकतर लोग उस बात को छोटा नहीं मानते, आप भी नहीं मानेंगे। मार्क्स के पास श्री रामकृष्ण देव जैसा गुरु नहीं था। मार्क्स ने जो समझा है धर्म को, केवल किताबों से समझा। मार्क्स ने कहा है धर्म आदमी के लिए अफीम की तरह है। और आपको जानकर आश्चर्य होगा कि स्वामी विवेकानन्द ने भी एक बार अपने भाषण में यह कहा कि "धर्म हममें से कुछ लोगों के लिए अफीम खाने जैसा है"। मार्क्स का यह ऐतिहासिक वाक्य, विवेकानन्द का यह ऐतिहासिक वाक्य, इन दोनों की समानता के बावजूद स्वामी विवेकानन्द ने रोटी और धर्म को मिलाकर हिन्दुस्तान के इतिहास में जो क्रांति की जो बात कही उसके पीछे श्री रामकृष्ण देव का योगदान था। और यही एक बात है कि हम जो हिन्दुस्तानी हैं वो दुनिया में तरक्की करने के लिए क्रांति करने के लिए किताबों को सबसे बड़ा नहीं मानते, हम गुरु को सबसे बड़ा मानते हैं। और कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि कार्ल-मार्क्स बेचारा अभागा था, अगर उसके पास कोई गुरु पैदा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हुआ होता तो शायद उसने जो बौद्धिक क्रांति की होती, उसके आयाम कुछ और होते, उसकी बात कुछ और होती। यह स्वामी विवेकानन्द का एक विशिष्ट योगदान धरती के इतिहास में, मनुष्यता के विकास में, सारी दुनिया को एक करने के क्रम में रहा है।

यह सतही बातें तो सब्र लोग कर लेते हैं, कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक है। यह हल्की-फुल्की बात तो हममें से हर कोई जानता है। कि असाम्प्रदायिकता हमारे संविधान का सार है। सारे धर्मों में सर्वधर्म समभाव है यह बात तो हमको करनी चाहिए। लेकिन श्री रामकृष्ण देव ने इसको इस तरह से हासिल नहीं किया था। उन्होंने हर धर्म के मतावलम्बी की तरह रहके, उसका भोजन करके, उसकी वेशभूषा पहनकर, उन धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करके, सुनके और लगातार इस बात को महसूस किया और महसूस करने के बाद अंत में पाया कि सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है। इसीलिए यहीं पर पेंच छुपा हुआ है। हममें से कुछ लोग पश्चिम की तरफ मुंह खड़ा करके कहते हैं कि हिन्दुस्तान तो यही कहता है, और हम सब मिलकर कहते हैं, कि सभी धर्मों का सार एक है। इसीलिए हिन्दुस्तान के हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि विवेकानन्द भी कहते हैं, कि सभी धर्मों का सार एक है उसको तुम लोग मानों। यहीं पर पेंच है। श्री रामकृष्ण देव का शिष्य, हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि, एक धर्म का प्रतिनिधि नहीं था जब धरती पर वह पैदा हुआ। आप जानते हैं श्री रामकृष्ण देव ने विवेकानन्द को एक दिन कहा था कि मेरा शिष्य इस दुनिया का शिक्षक बनेगा। तब यह बात शायद शिष्य की समझ में भी नहीं आई थी, कि उनके अन्दर वह चीज छिपी हुई है, कि शायद वह सारी दुनिया का शिक्षक बनने की एक ताकत रखते हैं, बौद्धिक ताकत रखता हैं, रूहानी ताकत रखते हैं, यह शायद उनको बात पता नहीं थी। और जब विवेकानन्द अमरीका की धरती पर पहुँचे। जब उनके जहाज ने वहाँ लंगर डाला, और जब उन्हें पता लगा कि शिकागो धर्म सम्मेलन होने वाला है। तब उन्होंने ऐलान किया कि यह धर्म सम्मेलन तो मेरे लिए हो रहा है और धरती ने इस बात को अच्छी तरह से और अंत में देखा कि यह सम्मेलन वाकई उनके लिए हुआ था।

अध्यक्ष जी, आज हम एक ऐसे समय में खड़े हैं, सारी दुनिया में युद्ध नहीं होने पर भी शांति नहीं है। एटम की ताकत पाकिस्तान की तरफ से, और अन्य तरफ से भी शायद हमारे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अस्तित्व को झकझोरने के लिए बेचैन हो रही है। आज विवेकानन्द हैं, उनके विचार हमारे बीच में हैं, इसके बावजूद आर्थिक गैरबराबरी है। जातिवाद है। आज भी गरीब आदमी को अधिकारों का टोटा पड़ा हुआ है। हम विवेकानन्द के बहुत करीब हैं, शायद उनको छू सकते हैं, इतने करीब हैं इतिहास में, लेकिन इसके बाद भी स्वामी विवेकानन्द जो हमसे चाहते थे वह हमारी पीढ़ी ने उनके साथ किया नहीं है।

एक और कारण कभी-कभी मुझको इसका नज़र आता है। विवेकानन्द अपने समय से बहुत पहले पैदा हो गए थे। विवेकानन्द ने जो बातें कहीं है, वे बीसवीं सदी के काम में बिल्कुल नहीं आई। बीसवीं सदी एक बेरहम सदी रही है। इस सदी के खात्मे का छःबरस बाद हम इंतजार कर रहे हैं। इस सदी में दो महायुद्ध हुए। इस सदी में हिन्दुस्तान समेत कई देश आजाद हुए। यह सदी सभ्य बनने की कोशिश करती हुई सदी है। यह सदी हमारी आदिम आकांक्षाओं को कुचलने वाली सदी है। हम आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं। हम युद्ध कर रहे हैं। यह कैसी सदी है? इसलिए स्वामी जी, मुझे कभी-कभी लगता है कि विवेकानन्द के विचार बीसवीं सदी के विचार नहीं है, यह इक्कीसवीं सदी में काम आयेंगे। जब सारी दुनिया के एटम समेत छोट-मोटे हथियार हम समुद्र में फेंक देंगे और तब हम एक-दूसरे को समझने की कोशिश करेंगे। तब शायद विवेकानन्द के विचार गाढ़े वक्त में हमारे काम आयेंगे, यह विवेकानन्द की सार्वकालिकता है। और कुछ विचार तो मुझे, ऐसा भी लगता है कि, शायद बाईसवीं सदी में भी काम आयेंगे। महापुरुष की यही पहचान होती है।

महापुरुष की यह लाक्षणिक पहचान भी होती है। कृष्ण भी अपने समय से बहुत पहले पैदा हो गये थे कृष्ण ने जो राधा के साथ संबंध स्थापित किया, उदाहरण के लिए वह भाई और बहन का संबंध नहीं था, वह सखा और सखी का संबंध था। हमारे जो मनोविज्ञान के भी अध्यापक यहां उपस्थित हैं, वह वैज्ञानिक क़िसलय संबंध, या एक तरह से अवरुद्ध रसिकता का संबंध जिसको कहते हैं, वह कृष्ण के समय में हुआ था। कृष्ण ने जितने भी प्रयोग अपने समय में किये थे, मनोविज्ञान के क्षेत्र में, क्षमा करेंगे मैं धर्म के क्षेत्र में नहीं कह रहा हूँ, क्षमा करेंगे में युद्ध शास्त्र के क्षेत्र में नहीं कह रहा हूँ एक महान् मनोवैज्ञानिक की उपधारणाएं कृष्ण ने हमको दी हैं, वह सारी की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सारी धारणाएं पांच हजार बरस या तीन हजार बरस, जब भी कृष्ण हुए हों, आज हमारी समझ में आ रही हैं। यही विवेकानन्द का भी दोष था। उनकी बहुत सी बातें अपने चालीस बरस के छोटे जीवन में जो की हैं, वह इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर अब हमको ज्यादा समझ में आ रही हैं। औरतों को बराबर का अधिकार देने की बात हो, सारी दुनिया में सारे धर्मों को मिलाकर कम्पेरेटिव रिलीजन पढ़ने की अगर बात हो, युद्ध को खत्म करने की बात हो, आर्थिक तंत्रों में हर तरह की छूट देने की बात हो, मनुष्य में आध्यात्मिकता के दर्शन करके देवी-देवताओं को रुखसत करने की अगर बात हो, तमाम तरह की अंतर्विरोधी बातें जो विवेकानन्द ने हमसे कही हैं, वह इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर, उसकी गोद में हम रखें, भेंट के रूप में तो मुझे विश्वास है, मैं बहुत दिन शायद नहीं रहूँगा, लेकिन जो बच्चे उठके यहाँ से चलेंगे, और इसके बाद की जो पीढ़ियां आयेंगी, वह इस बात को महसूस करेंगी, कि विवेकानन्द में जो सारी बातों का फैलाव है समय के आयाम में, उसका अक्स कहीं न कहीं हमको समझ में आयेगा। मैं बहुत बातें आपसे और नहीं करूंगा, ये एक जैसे बच्चा किलकारी लेता है, उस तरह का भाषण है, आज स्वामी आत्मानन्द जी का जन्मदिन है। समझ लो कि इस व्याख्यान के माध्यम से वह पैदा हुए। तो अब धीरे-धीरे बोली की तुतलाहट साफ होगी, एक साल में, दो साल में, पांच साल में, दस साल में, तब क्रमशः विद्वान् वक्ता जो आयेंगे वह अपनी बातें कहेंगे। इसलिए छोटा बच्चा जो बात कहे वह गलत हो सकती है चलकर आँकर लेकिन उसकी कहने की जो नीयत है, कहने की जो उसकी मंशा है वह अपनी जगह ठीक है। हमारे विद्वान् साहित्यकार भी यहाँ बैठे हैं इसलिए मैं एक आध ही वाक्य में कहना चाहता हूँ। सरयूकांत जी झा खासतौर से मेरे गुरुदेव यहाँ बैठे हैं।

अध्यक्ष जी, अक्सर हममें से प्रत्येक जो संज्ञा है, हम जब पैदा होते हैं संज्ञा के रूप में पैदा होते हैं, हमको हमारे नाम से लोग पहचानते हैं। हममें से कुछ लोग माता-पिता की वजह से, बच्चों की वजह से, पत्नी की वजह से, भाई-बहन की वजह से, पड़ोसी की वजह से, मित्रों की वजह से थोड़ा आगे बढ़ने की हिम्मत कर पाते हैं, शायद उस कोटि में हम लोग खड़े हैं, तब हम सर्वनाम बनते हैं कुछ लोग हममें से बढ़ जाते हैं, कुर्बानी करते हैं थोड़ी बहुत, हम उनको विशेषण कहते हैं।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बहुत 'अभागे' लोग जब देखते हैं कि उनमें से एक विरला आदमी निकलता है तब वह समास बनता है। और समास के बने हुए व्यक्तियों में से बहुब्रीहि समास बनता है। विवेकानन्द हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता के, धरती की आध्यात्मिकता के बहुब्रीहि समास हैं। मैं केवल आपको खुश करने के लिए नहीं, स्वामी विवेकानन्द को धोखा देने के लिए नहीं, श्री रामकृष्ण देव के साथ अन्याय करने के लिए नहीं, मैं एक विवेकानन्द साहित्य के जिज्ञासु विद्यार्थी की हैसियत से इस प्रज्ञा-पुरुष के संबंध में जो कुछ कह रहा हूँ, एक बात मुझे और तकलीफ देती हैं, कि मैं जितना विवेकानन्द को पढ़ने की कोशिश करता हूँ उतना ही भूलता जाता हूँ। जब मैं स्कूल का विद्यार्थी था चूंकि मैं स्कूल में एक विद्यापीठ में खड़ा हूँ, तो रटे-रटाये भाषण जब देता था तो मुझे लगता था कि मुझे स्वामी विवेकानन्द पर बहुत कुछ पता है। उनकी तमाम किताबें मुझे ईनाम में मिलती हैं, और इतने बरस बीत जाने के बाद शासकीय नौकरी में होता तो मैं भी सेवानिवृत्ति के क्षण गिनता। आज मुझे ऐसा लगता है कि जो कुछ मैंने आपसे कहा वह सबकी सपाट-बयानी थी। पता नहीं क्या कह दिया आपसे। विवेकानन्द के विचारों में क्रांति के ये जो स्फुलिंग हैं, उनके अन्दर जो जीवंतता है, उनके अन्दर जो ताकत है, उनके अन्दर जो लगातार ऊहापोह की स्थिति है विवेकानन्द साहित्य पढ़िये, आपको एक सफे पर कुछ लिखा मिलेगा। दूसरी किताब के किसी सफे पर और कुछ लिखा हुआ मिलेगा। यह एक अजब तरह का वहां पर कोलाहल है, जो बाहर नहीं सुनाई पड़ता अन्दर होता है।

मैं इस बात से बहुत परेशान हूँ। और यही तो धरती का अर्थ है। जिस तरह हृदय धड़कता है हमारे मन में, यह शरीर तो सब नकली है, असल तो हृदय की धड़कन है, असल तो दिमाग के अन्दर जीवंतता है। विवेकानन्द साहित्य भी, विवेकानन्द का अस्तित्व भी, मैं साहित्य की बात बार-बार इसलिए करता हूँ कि विवेकानन्द तो शरीर के रूप में हमारे बीच में हैं नहीं, हम बड़े अभागे लोग थे कि हमने गांधी तक को नहीं देखा, टैगोर को देखने का सवाल ही पैदा नहीं हुआ। इन महापुरुषों के नहीं रहने की वजह से, उनका जो साहित्य है, उसमें जो जीवंत आक्रामकता है, उस आक्रामकता ने मुझे सदैव उद्वेलित किया। विवेकानन्द को जब मैं पढ़ता हूँ तो मुझे लगता है कि अपनी उंगली से सुबह उठकर मुझको कुरेदते हैं। इसलिए मैं ऐसा समझता हूँ कि हमको विवेकानन्द के बारे में शोध

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करना चाहिए। विवेकानन्द के बारे में हमें और भी खोजना चाहिए और मैं उस अमरीकी विदुषी को बार-बार प्रणाम करता हूँ स्वामी जी आप तो जानते हैं कि जिसकी वजह से एक अमर-वाक्य हमारी झोली में आ गिरा है।

१९८३ तक हम उस अमर-वाक्य को नहीं जानते थे। चार जो बड़े अखबार शिकागो से निकलते थे, उसके एक अखबार के संवाददाता की वजह से वह वाक्य हमारी चेतना की झोली में गिरा है जब विवेकानन्द ने पहली बार ताली पिटवाई और कहा "अमरीकावासी भाइयों और बहनों"। कौन समाजवाद की बात करता है, किसी धर्म सभा में आपने कभी किसी साधु को किसी संन्यासी को किसी वक्ता को विदेश में जाकर भाई और बहन बोलते देखा है, मुझे बताइए कि हिन्दुस्तान और अमरीका के संबंधों में राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी और विद्वान् शोध कर रहे हैं। किस भारतीय ने अमरीकावासी निवासियों को, वहां के रहने वालों को भाई और बहन कहा। इस शब्दांश के बाद जब ताली बजी तब इसी विवेकानन्द ने कहा था कि "मैं धर्म का अनुयायी होने में गौरव अनुभव करता हूँ जिसके धर्म में बहिष्कार नाम का कोई शब्द नहीं होता" हम सबको स्वीकार करते हैं। हम सारी की सारी चेतना को स्वीकार करते हैं और इस महान् संन्यासी की याद में जो कुछ मैं लिख के लाया था वह तो कुछ अलग ही रह गया। कुछ और बातें दिमाग में आती चली गईं।

मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ मैं अपने प्रणाम उनको निवेदित करता हूँ। स्वामी आत्मानन्द जी की याद में और आप सबको इस बात के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ कि आज आपने इतना धीरज उठाकर मुझको सुनने का साहस जुटाया। सदैव की तरह शायद हो सकता है कि कभी आगे भी जुटाना पड़े। इसके लिए आपको धन्यवाद देना आवश्यक है। स्वामी जी कुछ जिम्मेदारियाँ आपने मुझे सौंपी। मध्यप्रदेश शासन में एक छोटे से प्रतिनिधि के रूप में आश्रम परिवार की तरफ से बैठा हूँ। यह विवेकानन्द विद्यापीठ हमारा स्वप्नलोक है। स्वप्न तो आत्मानन्द जी ने देखा था। आँखें हमारे पास छोड़ गये हैं। हम वचन लेते हैं इस जगह खड़े होकर कि जब तक स्वामी आत्मानन्द जी का विवेकानन्द के आदर्शों का यह स्वप्नलोक पूरा नहीं करेंगे, हम चैन से नहीं बैठेंगे। जो आवश्यकता होगी, मध्यप्रदेश के शासन से, जनता से और तरह के सहयोग की, उसमें कर्त्तव्य

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की भावना से हम बराबर जुड़े रहेंगे। यहाँ अनुसूचित जाति के बच्चे साठ सत्तर प्रतिशत की स्थिति में, अनुसूचित जनजाति के बच्चे अधिकतम नारायणपुर के आश्रम में और भी हमारे तमाम गरीब परिवारों के बच्चे पढ़ते हैं। ये हमारे भविष्य का भारत हैं। ये विवेकानन्द के संदेशवाहक हैं। ये आत्मानन्द जी के मानसपुत्र हैं। हम इनके लिए इस पीढ़ी के लिए जो कुछ भी कर पायें, मैं आपको अपने नेता दिग्विजय सिंह की तरफ से, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री की तरफ से वचन देता हूँ कि जब तक दिग्विजय सिंह की सरकार मध्यप्रदेश में हैं, आपके इस आश्रम को विवेकानन्द के विचारों को आत्मानन्द जी की स्मृति को हम कभी भी किसी तरह अपमानित नहीं होने देंगे, उपेक्षित नहीं होने देंगे। छोटा महसूस नहीं होने देंगे।

आप सबको बहुत-बहुत प्रणाम।

आपको एक बार फिर प्रणाम।

(विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में
६ अक्टूबर, १९९४ को दिया गया भाषण)

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
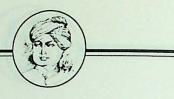
स्वामी विवेकानन्द

❐ डॉ. वी.पी. वर्मा

विवेकानन्द अद्वैत वेदान्त के महान् प्रतिपादक थे। निर्विकल्प समाधि में अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, ऐसा वे मानते थे और उनके शिष्यों तथा अनुयायियों की ऐसी धारणा है कि इस प्रकार की असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था जीवन में कम-से-कम दो बार उनको परमहंस रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त हुई थी। किन्तु ब्रह्मज्ञानी और जीवनमुक्त महात्मा होने के बावजूद भी स्वामी जी शक्ति की पूजा करते थे। यह कहना कि अपने अज्ञानी शिष्यों के सन्तोष के लिए वे ऐसा करते थे, ठीक नहीं होगा। स्वामीजी की निश्चित् धारणा थी कि जब तक ब्रह्मवेत्ता शरीर धारण कर रहा है तब तक उसे धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करना चाहिए। काश्मीर यात्रा के प्रसंग में उन्होंने क्षीर-भवानी के मन्दिर में विशेषरूप से यज्ञानुष्ठान किया था। अपने मुसलमान नाविक की चार वर्ष की कन्या का वे उमा के रूप में पूजन करते थे। अनन्तर एक ब्राह्मण पण्डित की छोटी लड़की का भी उमा कुमारी के रूप में वे कुछ दिनों तक प्रति प्रातःकाल पूजन करते थे। इन तान्त्रिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करने में उनके शरीर को अत्यधिक कष्ट हुआ था।

विराट् शक्ति की मातृरूप में स्वामी ने उद्‌भावना की है। उनका पूर्ण विश्वास था कि यही मातृशक्ति उनके जीवन को परिचालित कर रही है। मातृशक्ति की दुर्ज्ञेय क्रिया-प्रणाली को लक्ष्य कर अपनी एक कविता में वे लिखते हैं :

"स्यात् दीप्तिमान, ऋषि ने
जितना वह व्यक्त कर सका उससे अधिक देखा था;
कौन जानता है, किस आत्मा को और कब
माता अपना सिंहासन बनायेगी?

कौन विधान स्वतन्त्रता को बाँध सकता है?

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कौन पुण्य उसके (मातृशक्ति) ईक्षण को निर्दिष्ट कर सकता है,
जिसकी यदृच्छा ही सर्वोत्तम नियम है,
जिसका संकल्प दुर्लंघ्य कानून है?"

उनके प्रसिद्ध "अम्बास्तोत्र" में भी मातृशक्ति का विराट् स्तवन है। संसार रूप जल उसके द्वारा उत्ताल तरंगों में प्रवाहित (आघूर्णित) है। अविराम गति से वह कर्मफल का विधान कर रही है क्योंकि कर्मपाश की धारयित्री वही है। उसके स्वतन्त्र इच्छापाश से धर्म, अकृत, कपाललेख, अदृष्ट, नियम आदि सभी नियन्त्रित होते हैं। वह अमित शक्तिधारिणी है और जन्म-मरण के प्रवाह की भी विधात्री है। शत्रु, मित्र, स्वस्थ, अस्वस्थ आदि में वह समभाव रखती है। मृत्यु और अमृतत्व भी उसकी दया पर आश्रित है। वर अभय की प्रतिष्ठा और जगत् की एकमात्र शरण्या है। उसी के कलित विलास से मानव दुःखसागर का संतरण कर संसिद्धि का लाभ करता है। इस अम्बास्तोत्र में उत्तंग व्यक्तित्व-सम्पन्न महाप्राण युगपुरुष विवेकानन्द का सरल मधुर भक्तिभाव प्रकटित है। शंकराचार्य जगत्प्रसिद्ध तत्ववेत्ता थे तथापि शिव के सम्बन्ध में रचित उनके मनोहारी श्लोक अतिशय लालित्यपूर्ण, भक्तिरसाप्लावित और मनोमुग्धकारी हैं। शक्ति की उपासना के लिए विरचित स्वामी विवेकानन्द का अम्बास्तोत्र भी बड़ा उदात्तभावनापूर्ण है।

काली को प्रलयकारिणी शक्ति के रूप में स्वामीजी ने एक कविता में मूर्त किया है। काली के आतंक से तारिकाएँ तिरोहित हो गयी हैं, मेघ सघन हो गये हैं, अन्धकार गहन हो चला है और आँधियाँ भीषण रव करती हुई भूचाल ला रही हैं, वृक्ष उखड़ गये हैं और जलधि नीलाभ गगन से प्रलयंकर आलिंगन करने के लिए कातर हो रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो भीषण निनाद करती हुई कालमृत्यु चारों ओर नृत्य कर रही है। ऐसी कराल वेला में स्वामीजी मातृशक्ति का आह्वान करते हैं। मातृशक्ति विपुल है। आतंक ही उसका नाम है, मृत्यु ही उसका निःश्वास है और उसका प्रादप्रक्षेप जगती को प्रनष्ट कर रहा है। वह सर्वनाशविधायिनी कराल कालशक्ति है। वह मुक्तकुन्ताला, दशभुजी, यमस्वरूपिणी, असिद्धारिणी, मुण्डसमान्वित, प्रेत-असुर-पिशाच-मर्दिनी, श्मशानवासिनी, महात्रासदायिनी विराट्रूपा है। जो दुःख और संकट को मधुर भाव से स्वायत्त कर सकता है, जो मृत्यु

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के दुर्धर्ष, भीषण, रोंगटे खड़े करने वाले रूप को अपने अंक में आश्लेष के लिए अपना सकता है उसी को मातृशक्ति काली अपना आश्रय प्रदान करती है।

"श्यामा का नृत्य" नामक एक दूसरी कविता में भी विवेकानन्द ने इसी आशय के भाव व्यक्त किये हैं। सुख की अभिलाषा और भोगों-सेवा माया के विलास हैं इन बन्धनों को मानव मातृशक्ति के अनुग्रह से ही काट सकता है। मलयानिल के मधुर सुगन्ध से अपने गृह को सुवासित करने की मानव कल्पना करता है किन्तु करकापात और पंचभूतों के भीषण युद्ध की आशंका से वह काँप उठता है। फेनिल नदियों और झरनों का प्रवाह उसे प्रिय है, किन्तु अंधकार जहाँ गरल अन्धकार को उगल रहा हो वह वहाँ नहीं रहना चाहता। भावनाओं और उद्वेगों का अकृत्रिम विलास मानव के लिए मनोहारी है किन्तु जहाँ अविराम गति से रक्तपात हो रहा हो और अश्व, हाथी और पैदल सेना दुर्दान्त मृत्यु के गर्भ में प्रवेश कर रही हो, वहाँ से वह हट जाता है। पृथ्वी का स्वर्णाभ, पुष्पमण्डित, फलगुम्फित रूप उसके मनोविनोद का साधन है किन्तु जब प्रलयकालीन धरित्री संसार को धंसाकर जलते हुए पाताल की ओर प्रयाण करती है तब संशयग्रस्त मनुष्य विचलित हो उठता है। विवेकानन्द की ऐसी धारणा इस कविता में व्यक्त हुई है कि इस प्रकार का विभाग-करण आंशिक दृष्टि के अवलम्बन के कारण ही है। जब मानव ऐहिक भोगवासनाओं से ऊपर उठेगा तभी वह मातृशक्ति काली के स्वरूप को पहचानेगा।

स्वामीजी ज्ञानयोगी और अनासक्त कर्मयोगी थे किन्तु अपने ग्रन्थ "राजयोग" में उन्होंने तान्त्रिक शक्तिपूजकों के षट्चक्र का उल्लेख और समर्थन किया है। ये छः चक्र हैं-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। इनके परे सहस्रार चक्र हैं जिसका ज्ञान उन ओजसम्पन्न योगियों को होता है जिनकी सुषुम्ना नाड़ी विशुद्ध और निर्बन्ध होती है। तान्त्रिकों की भाँति विवेकानन्द कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में भी आस्थावान् थे।

कतिपय विदेशी आलोचक शक्ति-पूजा का उपहास करते हैं। लिंगपूजन और योनिपूजन पर इनका आक्षेप है कि ये प्रजननेन्द्रिय के पूजन हैं, अतः दूषित हैं। यह सिद्ध करने के लिए कि योनिपूजन अंग विशेष का निन्दनीय पूजन है, पश्चिमी आलोचक यह भी कहते हैं कि कौड़ी और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

शंख, योनि के प्रतीक के रूप में, कई स्थानों में पूजे जाते हैं। पश्चिमी आलोचकों और उनके भारतीय अन्धानुयायियों का यह भी कथन है कि शिव-शक्ति की पूजा अनार्यों अथवा द्रविड़ों में प्रचलित थी और उन्हीं से आर्यों द्वारा अपनायी गयी। विवेकानन्द हिन्दू जनता के आचार्य थे और इन आक्षेपों का उन्होंने जोरदार उत्तर दिया। पेरिस में सन् १९०० में जो विश्वधर्म सम्मेलन हुआ था, वहाँ पाश्चात्य विद्याविशारदों को ललकारते हुए उन्होंने बताया कि लिंग पूजन, प्रजननेन्द्रिय का उपहासास्पद पूजन न होकर यज्ञस्तम्भ का पूजन है। उस सम्मेलन में जर्मन प्राच्यविद्याविद् का उपहासास्पद पूजन न होकर यज्ञस्तम्भ का पूजन है। उस सम्मेलन में जर्मन प्राच्यविद्याविद् गुस्टाव औपर्ट ने कहा था कि शालग्राम की पूजा स्त्री के उत्पादन-अंग का पूजन है। स्वामी विवेकानन्द ने अथर्ववेद का हवाला दिया जहाँ स्तम्भ या स्कम्भ को ब्रह्मास्थानीय माना गया है। अथर्ववेद के आशय को व्यक्त करने वाले प्रकरण लिंगपुराण में भी हैं। काली को अनार्यों की क्रूर, रक्तपिपासु देवी कहकर उपहास करने वाले ईसाइयों को स्वामीजी ने कड़ी फटकार दी और कहा कि भारतीय संस्कृति के प्रसार के क्रम में यही काली और उमा, ईसा मसीह की माता कन्या मेरी के रूप में पूजित हो रही है। आर्य और द्रविड़ के नस्ल या प्रजाति (रेस) सम्बन्धी अर्थ को न ग्रहण कर स्वामीजी समस्त हिन्दुओं को आर्य मानते थे, भले ही मेकडोनल, गफ और अन्यों को इससे सहमति न हो। ईसाइयों ने इस बात का जोरदार प्रचार किया कि उत्तरी भारत के हिन्दुओं के पूर्वज पश्चिमी एशिया या मध्य यूरोप से आये । इसमें उनकी राजनीतिक चाल थी क्योंकि इससे वे हिन्दुओं की राजनीतिक दृढ़निष्ठा को शिथिल करना चाहते थे। जब पश्चिमी विचारक ऐसा मानते हैं कि समस्त मानवों का क्रमशः लंगूरों से ही विकास हुआ है, तब उनकी दृष्टि में आर्य, द्रविड़, कोल आदि के अन्तर का इतना आग्रह नहीं रहना चाहिए। अपने ग्रन्थ "प्राच्य और पाश्चात्य" में विवेकानन्द ने नस्ल की दृष्टि से समस्त हिन्दुओं को एक ही माना है। स्वामीजी के प्रयत्न की महत्ता तब विदित होती है जब आज के आन्दोलनों की तात्विक उग्रता को हम देखते हैं। आर्चिबाल्ड एडवर्ड गफ नामक विद्वान् ने अपने ग्रन्थ "फिलासफी ऑफ द उपनिषद्स" में लिख मारा कि ब्राह्मणों में आर्यों के अतिरिक्त मंगोल, तातारों और हब्शिवत् (निग्रोयाड) लोगों का रक्त प्रवाहित हो रहा है। दक्षिण भारत में आर्य और द्रविण का पृथक्करण इतना घर कर गया है कि वे रक्तपात करने पर भी उतारू हैं। इस पृष्ठभूमि में स्वामीजी के कथन का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वैशिष्ट्य हमारे ध्यान में आता हैं कि समस्त हिन्दू आर्य है और इनके प्राचीन ग्रन्थ इसी आशय की घोषणा करते है। विवेकानन्द की ऐसी मान्यता थी कि यूरोपीय लोग खशों के वंशज हैं। 'खश' अशिक्षित आर्य कबीले को कहते हैं।

विवेकानन्द सर्वदा यह चाहते थे कि विदेशियों की आलोचनाओं और आक्रमणों से समस्त हिन्दू जाति का संगठन टूटने न पाये। वे दुःखवाद के आलिंगन के बदले आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और "स्वयमेव मृगेन्द्रता" के शक्तियोग के समर्थक थे। भौतिकवाद में रमण करने के बदले आध्यात्मिक वेदान्त की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप देने का उनका जोरदार प्रस्ताव था। सदियों से पीड़ित और अपमानित हिन्दुओं को शक्तियोग के महामन्त्र से दीक्षित करना ही स्वामीजी की कविताओं और व्याख्यानों का उद्देश्य है। जब शक्तियोग की आराधना में हिन्दू जाति लगेगी तभी आपस के अनेक भेदकारी बन्धन समाप्त होंगे और एक स्वस्थ राष्ट्र की स्थापना हो सकेगी।

वस्तुतः शक्तिपूजा का वामाचार या कौलाचार से कोई सम्बन्ध नहीं है। शक्तिपूजा विशुद्धि का निर्मल मार्ग है। विवेकानन्द की ऐसी धारणा थी कि मूर लोगों ने स्पेन के ऊपर अपने राज्यकाल में पश्चिमी सभ्यता में शक्तिपूजा का सूत्रपात किया। बाद में जब मूर लोगों ने शक्ति पूजा को छोड़ दिया तब उनका पतन हुआ। भारतीय संस्कृति में उमा, सीता, सावित्री और दमयन्ती आदि पूज्य नारियों को जो महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है वह यहाँ की देव-संस्कृति का आधार स्तम्भ रहा है। जब-जब इस आदर्श की उपेक्षा हुई और विलासवाद का आरम्भ हुआ तब यह देश रसातल को पहुँचा। विराट् मातृशक्ति की व्यापकता को समझने वाला व्यक्ति ही सत्य और धर्म की महिमा को जानकर दृढ़व्रत रह सकता है। धर्म को भोगवाद का अस्त्र बनाना वह कदापि नहीं सह सकता। जो सत्य, धर्म और शिव की उत्कृष्टता व्यक्त कर सके और सर्वविध अभय का संचार कर सके वही सच्चा शक्तियोग है। इस शक्तियोग की साधना ही राष्ट्रधर्म और व्यापक मानव धर्म है।

विवेकानन्द आधुनिक जगत् के वीर-ऋषि (=वीरर्षि)

१. विवेकानन्द का व्यक्तित्व

विवेकानन्द का व्यक्तित्व शक्तिशाली, तेजस्वी तथा सर्वतोमुखी था। यद्यपि उनका शरीर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

खिलाड़ियों की भांति गठीला और पुष्ट था फिर भी उन्हें प्लोटीनुस और स्पिनुस और स्पिनोजा की भांति रहस्यात्मक अनुभूति थी तथा उस परमार्थ सत् (ब्रह्म) के साथ उनका सामंजस्य था जिसका विवेचन अद्वैतवादी वेदान्तियों ने किया है। साथ ही साथ वे एक मनीषी भी थे और अध्यात्मवादी वेदान्त के रहस्यों, यूरोपीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान के मूल सिद्धान्तों से भली-भांति परिचित थे तथा मनुष्य के कष्टों का निवारण करने के लिए उनके मन में ज्वलन्त उत्साह था। जो व्यक्ति एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका की प्रथम ग्यारह जिल्दों (बीस में से) पर अधिकार कर लेने का पराक्रम दिखला सकता था उसके मन में असम्प्रज्ञात परमानन्दमय दिव्य अवस्था का प्रत्यक्ष अनुभव करने तथा उसमें निमग्न होने की उत्कृष्ट व्यग्रता थी। ब्रजेन्द्रनाथ सील ने प्रमाणित किया है कि विवेकानन्द प्रारम्भ से ही परम सत्य का साक्षात्कार करने के लिए बेचैन रहते थे। यद्यपि स्वमीजी अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठित आचार्य थे, फिर भी उनके व्यक्तित्व में भक्तिभावना का प्राधान्य था जैसा कि माधव, वल्लभ आदि वेदान्त के पुरातन आचार्यों में देखने को मिलता था। विश्व उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता है जिसकी बुद्धि प्रकाण्ड थी और जिसने अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति को भारत के पुनरुद्धार के कार्य में लगा दिया था। वे भिक्षु, समाज को संजीवित करने वाले और मानवप्रेमी लोकाराधक थे। जैसा कि वे स्वयं कहा करते थे, उनकी इच्छा होती थी कि वे समाज पर प्रभंजन की भाँति टूट पड़े। वे ईश्वरीय नगरी के तीर्थयात्री और दलितों के लिए संघर्ष करने वाले महान्-योद्धा थे। अतः स्वामीजी का व्यक्तित्व दो प्रकार से अद्‌भुत था- प्रथम, उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, दूसरे, उनका मन देश के जीवन में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक बुराइयों को देखकर छटपटाया करता था। उन्होंने संन्यास तथा समाजसेवा दोनों का उपदेश दिया। उनकी बौद्धिक दृष्टि बड़ी स्वच्छ थी और वे भारतीय इतिहास में व्यक्त विविध जीवन धाराओं को गहराई से देख और समझ सकते थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उनके मन में ऋग्वेद से लेकर कालिदास, कांट और स्पेंसर तक प्रत्येक वस्तु स्पष्ट एवं स्वयं प्रकाशित थी। उनका दावा था कि उन्होंने लोकातीत सत्य का साक्षात्कार कर लिया था। फिर भी वे सिंह के से पराक्रम के साथ कार्य करने के लिए उद्यत रहते थे। उन्हें देखकर ऐसा नहीं लगता था कि उनकी आत्मा सांख्य के 'पुरुष' की भाँति शान्त थी, अपितु वह वैशेषिक के आत्मन् और उपनिषदों के उस आत्मन् के सदृश सक्रिय प्रतीत होती थी जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को स्फूर्ति और प्राण

देने वाला है। ऐसा लगता था कि उनके तेजस्वी व्यक्तित्व में महाभारतकालीन शूरवीरों और मौर्य तथा गुप्त युगों के हिन्दू साम्राज्यवाद के प्रवर्तकों के 'वीर्य' और 'ओजस्' तथा वेद और वेदान्त के प्राचीन ऋषियों के 'तेजस्' का समन्वय था। यही कारण था कि उन्तालीस वर्ष के अल्प जीवन में स्वामीजी चमत्कार कर दिखलाने में समर्थ हो सके।

इस 'हिन्दू नेपोलियन'-स्वामी विवेकानन्द-ने अमरीकी महाद्वीप और यूरोप में जो विजय-यात्राएँ की थीं उन्होंने लोगों को दिखला दिया कि हिन्दुत्व एक बार पुनः शक्तिशाली हो गया है और वह विश्व में आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक-दार्शनिक प्रचार करने के लिए कटिबद्ध है। अमेरिका और यूरोप के नवीन साम्राज्यवाद को एशिया के इस प्रत्याक्रमण का सामना करना पड़ा। अतीत में एशिया ने यूरोप को धर्म तथा संस्कृति के मूल तत्व प्रदान किये थे। (यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, रोम के धर्म पर पूर्वात्य प्रभाव, आइवेरी प्रायद्वीप स्पेन में इस्लाम तथा थ्योरो तथा इमर्सन पर वेदान्त का प्रभाव) और अब एशिया यूरोप को पुनः नैतिक प्रेरणा देना चाहता था। सितम्बर १८९३ में शिकागो के विश्व-धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द ने जो ओजस्वी भाषण दिये उन्होंने हमारी मातृभूमि को एक नया आत्मविश्वास प्रदान किया-ऐसा आत्मविश्वास स्वतन्त्र परराष्ट्र नीति का सच्चा पूर्वगामी हुआ करता है। ऋषियों के इस देश का यूरोपीकरण करने की मर्कटवृत्तिशीला कुटिल चाल को एक महान् चुनौती का सामना करना पड़ा। अतः विवेकानन्द भारत के सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में एक गत्यात्मक, व ओजमय आध्यात्मिक उत्साह का पुट देने में सफल हुए। लूथर और काल्विन ने पश्चिमी यूरोप को जो ओजस्विता प्रदान की थी वह ओजस्विता विवेकानन्द और दयानन्द ने तत्कालीन भारतीय सभ्यता के स्तब्ध वातावरण में फूँक दी थी। इसमें सन्देह नहीं कि बंगाल के अरविन्द, सुभाषचन्द्र आदि नेताओं पर विवेकानन्द का प्रभाव बहुत गहरा था।

२. हिन्दू धर्म का सार्वभौम रूप

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म का इस आधार पर समर्थन किया कि वह नैतिक मानववाद और आध्यात्मिक आदर्शवाद का एक सार्वभौम सन्देश है। इस प्रकार उन्होंने विश्व-धर्म के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध अत्यन्त भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ फैला

रखी थीं, ये लोग साम्राज्यवादी भावनाग्रन्थि के शिकार थे और समझते थे कि ईश्वर ने काले तथा पीले लोगों को सभ्य बनाने का भार हमारे सिर पर रखा है, किन्तु वस्तुतः वे इस प्रकार के प्रचार के द्वारा एशिया तथा अफ्रीका के आर्थिक शोषण का मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। १८७० के बाद आधुनिक साम्राज्यवाद का जो उदय हुआ उसके अध्ययन से उक्त कथन की पुष्टि होती है। किन्तु विवेकानन्द के लिए हिन्दू धर्म एक ऐसा व्यापक सत्य था जो न्याय, सांख्य और वेदान्त के द्वारा अपने हृदय में गम्भीरतम् दार्शनिक प्रतिभा को शरण दे सकता था, जो मनोवैज्ञानिकों को राजयोग के मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भण्डार दे सकता था, जो सामवेद के मंत्रों तथा तुलसीदास एवं दक्षिण के आलवार, नयनार सम्प्रदाय के सन्तों के भजनों के द्वारा भक्तों को प्रेरणा दे सकता था, और जो वीर कर्मयोगियों को गीता में श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादिक निष्काम कर्म का सन्देश दे सकता था। विवेकानन्द की दृष्टि में हिन्दू धर्म उन दुरूह पंथों, कर्मकाण्डी अन्धविश्वासों, परम्परागत मतवादों और आदिम कर्मकाण्ड का पुंज नहीं था जिन्हें देखने के लिए पल्लवग्राही यूरोपीय आलोचक दुर्भाग्यवश सदैव इच्छुक रहता है। उनकी निगाह में हिन्दू धर्म मानव-जाति के उद्धार के लिए नैतिक तथा आध्यात्मिक विधानों और कालनिरपेक्ष नियमों की संहिता था-एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना सार्वभौमः महाव्रतम्। (योग सूत्र, २, २६)।

स्वामीजी हिन्दू धर्म को धर्मों की जननी मानते थे, और इस बात को कुछ सीमा तक इतिहास द्वारा प्रमाणित भी किया जा सकता है। प्राचीन वैदिक धर्म ने बौद्ध धर्म को प्रभावित किया था और बौद्ध धर्म ईसाई धर्म के उदय में एक शक्तिशाली तत्त्व था। वैदिक धर्म ने ईरान और मीडिया के धर्मों को प्रभावित किया था, और छठी शताब्दी ई.पू. में जूड़िया में सुधारवादी नैतिक आन्दोलन चला। उसके कुछ पहलू पश्चिमी एशिया (ईरान और भारत) के धर्मों से प्रेरित हुए थे। इन धर्मों के सम्बन्ध में यहूदियों को उस समय जानकारी प्राप्त हुई थी जब वे बाबुल (बेबीलोनिया) में बन्दियों के रूप में रह रहे थे। मिस्र तथा पश्चिमी एशिया के इतिहास में जो शोध हो रही है उससे सिद्ध हो रहा है कि प्राचीन धर्म का उन दूरवर्ती प्रदेशों में प्रवेश हो चुका था। तेल-अल-अमर्ना में जो पत्र (१३८०-१३५० ई. पू. के लगभग) उपलब्ध हुए हैं उनमें वैदिक नामों का उल्लेख है। उदाहरण के लिए, 'अर्तमन्य' शल्द 'ऋतमन्यय' का परिवर्तित रूप है। (ए.बी. कीथ, इण्डियन हिस्टोरीकल क्वार्टरली,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

१९३६, पृ. ५७३) ऋतप्राचीन भारतीय दर्शन की महत्वपूर्ण धारणा है। मित्तनी देवताओं के नाम निश्चय ही वैदिक नाम है। इन नामों का १४०० ई.पू. के अभिलेखों में जिक्र आता है।

विवेकानन्द वैदिक धर्म से लेकर वैष्णव धर्म तक सम्पूर्ण हिन्दुत्व के प्रतिनिधि थे। उन्होंने वैदिक संहिताओं पर उतना बल नहीं दिया जितना स्वामी दयानन्द ने दिया था। उन पर उपनिषदों के ज्ञानकाण्ड का विशेष प्रभाव पड़ा था। विवेकानन्द का सार्वभौमवाद अशोक की उदार संस्कृति का स्मरण दिलाता है। उनका पालन-पोषण उनके गुरु रामकृष्ण के प्रभाव के अन्तर्गत् हुआ था और रामकृष्ण का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस बात का द्योतक और प्रमाण था कि सभी धर्मों में आध्यात्मिक सत्य निहित है। स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दुओं में विधर्मियों को अपने धर्म में सम्मिलित करने की प्रथा अंशतः पुनः प्रारम्भ कर दी। यह प्रथा अनेक शताब्दियों में समाप्तप्राय हो गयी थी।

विवेकानन्द की परिभाषा के अनुसार धर्म वह नैतिक बल है जो व्यक्ति और राष्ट्र को शक्ति प्रदान करता है। उन्होंने गरजते हुए शब्दों में कहा था, " शक्ति जीवन है, दौर्बल्य मृत्यु है।" जवाहरलाल नेहरू ने अपनी 'भारत की खोज' में बतलाया है कि स्वामीजी की शिक्षाओं का सार अभयम् था। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है, "नायामात्मा बलहीनेन लभ्यः।" विवेकानन्द क्षत्रियों के पुरुषत्व और ब्राह्मणों की बौद्धिकता का समन्वय करना चाहते थे। उन्होंने अपने दुर्बल बनाने वाली सब रहस्यात्मक भावनाओं से दूर रखा। मैलमैद ने अपनी पुस्तक 'स्पिनोजा एण्ड बुद्ध' में यहूदी धर्म तथा हिन्दू धर्म का अन्तर बतलाया है। उसका कहना है कि यहूदी धर्म व्यक्तिवादी, आस्तिक आशावादी था और विश्व को मानवकेन्द्रित मानता था। इसके विपरीत हिन्दू धर्म सार्वभौमवादी, निराशावादी, ब्रह्माण्ड केन्द्रित तथा विश्व का निषेध करने वाला था। ये सामान्य निष्कर्ष भारतीय इतिहास और दर्शन के उथले अध्ययन पर आधारित है। मौर्य साम्राज्य तथा मराठा राजतन्त्र के निर्माता कोरे भावुक व्यक्ति नहीं थे। विवेकानन्द अद्वैतवादी होते हुए भी लौकिक क्षेत्र में ओजस्वी तथा साहसपूर्ण कर्म के समर्थक थे और उन्होंने वीरतापूर्वक इस बात का सन्देश दिया कि निरपेक्ष शूरत्व तथा दृढ़ और साहसपूर्ण विश्वास इतिहास को हिला सकता है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

३. वेदान्त तथा आचारशास्त्र

यूरोपीय आलोचकों का आरोप है कि भारतीय दर्शन आचारनीति (नैतिकता) के प्रति उदासीन है। डॉ. ए.बी. कीथ ने कहने का दुस्साहस किया है : "ब्राह्मणों के बौद्धिक कार्यकलाप की तुलना में उपनिषदों का नैतिक तत्व नगण्य तथा मूल्यहीन है। ... वे (ब्राह्मण) यह समझने में पूर्णतः असमर्थ रहे कि नैतिकता दर्शन का सर्वाधिक वस्तुगत और तात्विक अंश होता है। "किन्तु विवेकानन्द और रामतीर्थ ने अपने अमेरिका में दिये गये व्याख्यानों में बतलाया है कि आध्यात्मिक समानता की शिक्षा देने वाला वेदान्ती तत्वशास्त्र ही बहुसंख्य मनुष्यों के लिए समानता के व्यवहार की सच्ची गारण्टी हो सकता है। फ्रान्स की क्रान्ति ने स्वतंत्रता तथा समानता की शिक्षा दी थी, किन्तु उसने विकृत होकर नेपोलियन प्रथम तथा नेपोलियन तृतीय के साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लिया। रूस में सर्वहारा के अधिनायकत्व का नारा लगाया गया, किन्तु अब उसने तिकड़मबाज गुट के, जिसे अग्रदल कहा जाता है, अधिनायकत्व का रूप धारण कर लिया है, क्योंकि इन आन्दोलनों के मूल में नैतिक प्रेरणा का अभाव है। अन्ततः वास्तविक आचारनीति तथा सामाजिक नैतिकता का प्रयोजन विश्व में सम्यक् आचरण एवं स्वतंत्रता, अधिकार, आत्मचेतना तथा शुभ का विकास करना है। वेदान्ती तत्वशास्त्र (अध्यात्म) अपने मायावाद के कारण व्यक्ति की मनोगत नैतिक प्रवृत्ति का निषेध नहीं करता, अपितु वह नैतिक कर्म के लिए चट्टानवत् आधार का निर्माण करके उसे (नैतिक कर्म को) सशक्त बनाता है।

४. विश्व-चिन्तन में विवेकानन्द का योगदान

विवेकानन्द ने उपनिषदों के अद्वैतवाद का, जिसे बादरायण और शंकर ने पद्धतिबद्ध किया था, समर्थन किया। उनका कहना था कि सच्चिदानन्द ही परम तथा नित्य सत्ता (परमार्थ सत्) है, और दार्शनिक चिन्तन तथा जीवन के द्वारा उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। शंकर के मतानुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त है। किन्तु विवेकानन्द ने ब्रह्माण्ड की सत्ता को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया, यद्यपि दार्शनिक दृष्टि से उन्हें ऐसा करना चाहिए था। उन्हें अपने गुरु रामकृष्ण से प्रेरणा मिली थी और रामकृष्ण विश्व के नियामक तत्व को माता के रूप में देखते थे। यह विचार तन्त्र का मुख्य सिद्धान्त

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है और बीज रूप में प्राचीन सिन्धु तथा पश्चिमी एशिया के धर्मों में देखने को मिलता है।

विवेकानन्द ने विकासवाद का एक विचित्र सिद्धान्त प्रतिपादित किया। विद्वानों का मत है कि स्वामीजी का सिद्धान्त डार्विन के सिद्धान्त का पूरक है। "यद्यपि स्वामीजी ने स्वीकार किया कि डार्विन का सिद्धान्त कुछ सीमा तक समीचीन है, किन्तु उन्होंने उसका उससे भी श्रेष्ठ पतंजलि के 'प्रकृति पूर्ति' के सिद्धान्त (जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्) के आधार पर खण्डन किया। उन्होंने बतलाया कि वह (पतंजलि का सिद्धान्त) विकास के कारणों का अन्तिम समाधान प्रस्तुत करता है।" उनका कथन था कि डार्विन का विश्लेषण निम्न स्तर की दृष्टि से पूर्णता तथा शाश्वत मोक्ष, जो उसके जन्मसिद्ध अधिकार हैं, दिला सकते हैं।

विवेकानन्द का ज्ञानशास्त्र परम्परागत वेदान्त के निरूपण पर आधारित है। उन्होंने बतलाया कि जो भी ज्ञान हमें बाहर से मिलता है वह वस्तुतः बाहर से प्राप्त कोई नवीन वस्तु नहीं होती। वह तो बाधाओं के निवारण के लिए एक अवसर होता है जिससे सहज, शुद्ध चेतना अपने पूर्ण वैभव एवं प्रकाश के साथ जगमगाने लगे।

विलियम जेम्स ने इस बात का उल्लेख किया है कि विवेकानन्द ने आधुनिक मनोविज्ञान में 'अतिचेतन' की धारणा का समावेश कर दिया है। स्वामीजी के अनुसार धर्म का उदय तब होता है जबकि मनुष्य अपनी सामान्य संज्ञानात्मक शक्तियों से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है। गौतम बुद्ध ने भी कहा था कि उन्हें बोधि वृक्ष के नीचे लोकोत्तर सत्य का साक्षात्कार हुआ था। कांट ने भी कहा है कि धर्म 'बुद्धि का आधारभूत तत्व' है।- यहाँ बुद्धि से अभिप्राय व्यक्ति की मानसिक शक्ति नहीं अपितु ब्रह्माण्ड की सार्वभौम शक्ति है। सन्त अगस्ताइन, दान्ते और गेटे का भी कथन है कि धार्मिक चेतना मनुष्य में निहित असीम की चेतना के कारण उत्पन्न होती है। हेगेल के अनुसार ईसाइयों का अवतार का सिद्धान्त-जिसका अर्थ है आत्मा तथा पदार्थ का समागम-निरपेक्ष धर्म का उदाहरण है। किन्तु विवेकानन्द सच्चिदानन्द ब्रह्म को हेगेल के अवतार से श्रेष्ठ तत्व मानते थे। कांट और हेगेल सगुर्ण ईश्वर तक पहुंचकर रुक गये। हेगेल ने शैलिंग की भेदशून्य तात्विक परमार्थ सत् की धारणा का खण्डन किया और कहा कि 'यह तो पिंस्तौल से निकली हुई गोली के सदृश है।' न्यायमुक्तावली

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में तथा रामानुज की रचनाओं में निर्गुण ब्रह्म का खण्डन किया गया है। किन्तु विवेकानन्द महान् आचार्यों की रहस्यात्मक अनुभूतियों के आधार पर ब्रह्म में विश्वास करते थे, और उन्होंने स्वयं अपने जीवन में भी उसका साक्षात्कार करने का प्रयत्न किया। शंकर ने भी कहा है- "दिग्देशगुणगतिफल-भेदशून्यम् हि परमार्थसत् अद्वयं ब्रह्म मन्दबुद्धिनामसदिव प्रतिभाति।" (छान्दोग्य उपनिषद् भाष्य, ८,१,१)। विवेकानन्द का कहना था कि एकता ही परम सत्य है, किन्तु उस स्थिति तक पहुँचने से पहले द्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद की अवस्थाओं को पार करना होगा। श्री अरविन्द भी इसी दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं, तर्क व बुद्धि के लिए उनके (द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत) सहअस्तित्व की कल्पना करना कठिन है, किन्तु चेतना की एकता के द्वारा उसकी अनुभूति प्राप्त हो सकती है।" (ईश उपनिषद, पृ. ३०)। किन्तु अरविन्द और विवेकानन्द के दृष्टिकोण में अन्तर यह है कि विवेकानन्द उनके सहअस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे, अपितु उनका विश्वास था कि अद्वैत दृष्टि के उदय होने पर द्वैतवादी और विशिष्टद्वैतवादी दृष्टिकोण का स्वतः निराकरण हो जाता है।

स्वामीजी ने शोपेनहाअर के संकल्प की सर्वोच्चता के सिद्धान्त की भी आलोचना की (आधुनिक व्यवहारवादी दार्शनिकों ने संकल्प के सिद्धान्त का समर्थन किया है) उन्होंने कहा, शोपेनाहार का कहना है कि इच्छा अथवा संकल्प हर वस्तु का कारण है। जीवित रहने की इच्छा हमें व्यक्त करती है, किन्तु हम इसे स्वीकार नहीं करते। इच्छा प्रेरक तन्त्रिकाओं के समरूप होती है।..... इच्छा का कोई लेश भी ऐसा नहीं होता जो प्रतिक्रिया न हो। इच्छा से पहले कितनी ही अन्य घटनाएँ घट चुकती हैं। वह अहम् में से निर्मित कोई वस्तु है, और अहम् किसी उच्चतर वस्तु से निर्मित होता है। वह उच्चतर वस्तु बुद्धि है, और बुद्धि स्वयं भेदशून्य प्रकृति से बनती है। बेंदा का भी यही विचार था कि हम जो कुछ देखते हैं वह इच्छा ही है। किन्तु आप प्रेरक तन्त्रिकाओं को हटा दें तो मनुष्य की कोई भी इच्छा नहीं रह जाती। इस तथ्य को निम्न कोटि के पशुओं पर अनेक परीक्षण करके ढूँढ निकाला गया है।" शोपेनहाअर के समर्थन में यह अवश्य कहा जा सकता है कि उपनिषदों में अनेक अंश ऐसे हैं जिनमें बतलाया गया है कि ब्रह्माण्ड ब्रह्म की इच्छा का ही मूर्तरूप है।

विवेकानन्द की रुचि प्रधानतः धर्म तथा दर्शन में थी। वे समाजशास्त्री नहीं थे, इसलिए वे

सामाजिक विज्ञानों के विश्लेषणात्मक तथा प्रत्ययात्मक पक्षों में कोई महत्वपूर्ण योग नहीं दे सके। फिर भी वे समाज का क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण करना चाहते थे, किन्तु उनकी उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए कहना पड़ेगा कि इस क्षेत्र में वे अधिक कुछ न कर सके। कभी-कभी उन्होंने भारतीय इतिहास की समाजशास्त्रीय व्याख्या करने का भी प्रयत्न किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच दीर्घकालीन संघर्ष की ओर ध्यान आकृष्ट किया। यद्यपि अनेक उग्र सामाजिक विचारकों पर मार्क्स के वर्ग-संघर्ष तथा सर्वहारा के अधिनायकत्व का गहरा प्रभाव पड़ा है, फिर भी दयानन्द, अरविन्द, भगवान्दास आदि ने हिन्दुओं की कर्म-व्यवस्था पर आधारित कार्यमूलक सामाजिक संगठन का समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में इन विचारकों का मत है कि वर्ण-व्यवस्था ही मनुष्यों के आध्यात्मिक-बौद्धिक, रक्षात्मक, आर्थिक तथा सामाजिक कार्यकलाप का समन्वय कर सकती है। विवेकानन्द ने हमारे सामने कोई स्पष्ट और दो टूक सामाजिक कार्यक्रम नहीं रखा। फिर भी उन्होंने जाति-व्यवस्था और अस्पृश्यता की कटु भर्त्सना की। यह स्पष्ट है कि यदि वे देश की महान् उथल-पुथल को देखने को जीवित रहते तो उनके मन में शोषित जनता के उद्धार के लिए जो प्रबल भावनाएँ थीं वे उन्हें उग्र सामाजिक पुनर्निर्माण की दिशा में अग्रसर होने के लिए अवश्य बाध्य करतीं। किन्तु यह निश्चित है कि पश्चिम में तथा साम्यवादी चीन में स्वतन्त्रता के नाम पर जो सामाजिक उच्छृंखलता फैली हुई थी, उसको वे कभी सहन न करते। उस सीमा तक वे पुरातनपन्थी हो सकते थे। सम्भवतः उनका विश्वास था कि समाज का सुधार करने से पहले व्यक्ति का कल्याण करना तथा उसे मुक्ति दिलाना आवश्यक है। इसके विपरीत, फ़ासीवादी और साम्यवादी ढंग का अधिनायकवादी नियंत्रण मनुष्य की सर्जनात्मक प्रवृत्तियों को नष्ट कर देता है, और समग्रवादी हिंसामूलक समष्टिवाद व्यक्ति के स्वाभाविक अवयवी विकास का विरोध करता है। विश्व का लिखित इतिहास बतलाता है कि अब तक इतिहास थोड़े से व्यक्तियों और श्रेष्ठ पुरुषों का जीवनवृत्त रहा है, इसलिए अब मेरा आग्रह है कि बहुसंख्यक समाज को प्रतिनिधि लोकतन्त्र की व्यवस्था के द्वारा अपने को प्रभावकारी बनाना चाहिए। यह बात विवेकानन्द के नैतिक तथा आध्यात्मिक आदर्शवाद के अनुकूल होगी।

५. विवेकानन्द एक वीर-ऋषि के रूप में

विवेकानन्द के वीरतापूर्ण सन्देश का सारांश उनके निम्नलिखित शब्दों में निहित है और इनसे उनके ओजस्वी व्यक्तित्व के प्रधान तत्वों का भी पता लगता है। "मैं जानता हूँ कि केवल

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सत्य जीवन देता है, और, सत् की ओर अग्रसर होने के अतिरिक्त अन्य कोई बात हमें शक्तिशाली नहीं बना सकती, और कोई व्यक्ति तब तक सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता जब तक वह बलवान् नहीं बनता। शक्ति वह औषधि है जिसका सेवन धनिकों के अत्याचारों से पीड़ित दरिद्रों को करना चाहिए।..... अद्वैतवाद के दर्शन को छोड़कर अन्य कोई वस्तु हमें शक्ति नहीं दे सकती। अन्य कोई वस्तु हमें उतना नैतिक नहीं बना सकती जितना अद्वैतवाद का विचार'' इसीलिए हम देखते हैं कि भारत के अनेक महापुरुषों पर विवेकानन्द के व्यक्तित्व और विचारों का प्रभाव पड़ा है। नवीन-वेदान्त के सन्देश वाहक स्वामी रामतीर्थ को जिन्होंने मिस्र, जापान और अमेरिका में गर्जना की थी, उनसे गहरी प्रेरणा मिली थी, सुभाषचन्द्र बोस विवेकानन्द को अपना आध्यात्मिक गुरु मानते थे। अरविन्द उनके महान् प्रशंसक थे और अपनी किशोरावस्था में उन्होंने स्वामीजी के ग्रन्थों का अध्ययन किय था। स्वामी सत्यदेव उनके भक्त थे। राधाकृष्णन् ने लिखा है कि हिन्दू धर्म के समर्थन में विवेकानन्द ने जिस उत्साह और वाक्-चातुर्य का परिचय दिया था उसका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। महात्मा गांधी उनसे मिलने के लिए बैलूर मठ गये थे किन्तु वे उनके दर्शन न कर सके क्योंकि वे उस समय अस्वस्थ थे। उस समय १९०१ के आसपास गांधीजी एक नगण्य व्यक्ति थे। जवाहरलाल ने अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की है।

स्वामीजी के व्यक्तित्व की गम्भीरता अनिन्द्य है। 'संन्यासी का गीत' बंगालियों की बाईबिल है। वह उस सन्त, रहस्यवादी, योगी तथा देशभक्त का दाय है। स्वामीजी जगद्‌गुरु थे, किन्तु साथ ही साथ वे भारत माता के सपूत भी थे। उनकी उदात्त देशभक्ति की तुलना मत्सीनी, बिस्मार्क अथवा लिंकन की भावनाओं से की जा सकती है। आर्यावर्त की सेवा में उन्होंने जो समर्पण किया वह अद्वितीय था। कोलम्बो से अल्मोड़ा तक व्याख्यान वर्तमान काल की विभ्राजिष्णु गीता है। उसका उद्देश्य अगणित तामसी अर्जुनों को कठिन कर्म के लिए जाग्रत करना तथा उनमें शक्ति का संचार करना था।

स्वामी विवेकानन्द का राजनीतिक दर्शन

१. संन्यासी का उद्बोधन

स्वामी विवेकानन्द एक आध्यात्मिकतावादी और महान् सर्जनात्मक विभूति थे, भारत के

नैतिक तथा सामाजिक पुनरुद्धार के लिए उन्होंने एक अनुप्रेरित कार्यकर्ता के रूप में सम्पूर्ण जीवन खपा दिया। यदि राममोहन, केशवचन्द्र सेन और गोखले का विश्वास था कि इंग्लैण्ड का भारत में एक विशेष ध्येय है, तो दयानन्द और गांधी की भाँति विवेकानन्द की आस्था थी कि भारत का पश्चिम के लिए एक विशिष्ट सन्देश है। अपने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विकास के दौरान उन्होंने सहज आस्था का परित्याग करके संशयवादी अनीश्वरवाद को अंगीकार कर लिया, और कहा जाता है कि बाद में उन्होंने निर्विकल्प समाधि की अवस्था में पहुँचकर परमब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया- निर्विकल्प समाधि एक प्रकार की परा-चेतना की अवस्था मानी जाती है। देकार्ते के बाद का आधुनिक पाश्चात्य चिन्तन द्वन्द्वात्मक तत्व-शास्त्र के सूक्ष्म प्रश्नों का समाधान करने में लगा हुआ है। भारत में भी इस प्रकार के विचारक तथा मनीषी हुए थे, नव्य नैयायिक इसके सबसे बड़े नमूने हैं। किन्तु भारत में दर्शन का अर्थ है सत्य का साक्षात् दर्शन। इसलिए इस देश में कोई व्यक्ति तब तक दार्शनिक होने का दावा नहीं कर सकता था जब तक कि उसने अपने सिद्धान्तों के सत्य का आन्तरिक तथा अन्तःप्रज्ञात्मक साक्षात्कार न कर लिया हो। इंद्रियगम्य ब्रह्माण्ड (दृश्य जगत्) के क्षेत्र में अनुसन्धान करना विज्ञान का काम है, किन्तु दार्शनिक की दृष्टि उसमें अन्तर्निहित वास्तविकता की खोज करती है। स्वामी विवेकानन्द दार्शनिक शब्द के इसी अर्थ में दार्शनिक थे। अपनी गहरी निश्चलता के कारण ही वे अपना जीवन उस सत्य के अनुसार बिता सके जिसका उन्होंने दर्शन कर लिया था। कभी-कभी वे शान्त और गम्भीर संन्यासी के रूप में आकर शान्तिमय और उदात्तकारी वेदान्त मार्ग का प्रचार करने लगते थे। किन्तु वे सदैव दार्शनिक और रहस्यात्मक अनुभूतियों में मग्न रहते थे। उनके स्वभाव में ब्रह्म-साक्षात्कार की गहरी आकांक्षा दिखायी देती थी, किन्तु साथ ही साथ उनके मन में पापियों, दुःखियों तथा पीड़ितों के उद्धार के लिए ज्वलन्त उत्साह भी विद्यमान था। वे महान् देशभक्त थे, इसलिए देश की अधोगति को देखकर वे प्रायः बहुत दुःखी हुआ करते थे और कभी-कभी उनकी इच्छा होती थी कि एक मूर्तिभंजक के उत्साह और निष्ठुरता से कार्य करें तथा समाज की बुराइयों पर वज्र की तरह टूट पड़ें। उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि जाति-प्रथा के नियमों की जटिलता को उदार बनाया जाय। जीवन भर उनकी मानसिक वृत्तियाँ स्टॉइक दार्शनिकों की-सी रहीं, किन्तु उन्होंने पतितों, पापियों, दलितों तथा दरिद्र के मारे हुओं की दशा सुधारने के लिए धर्मयुद्ध का कभी परित्याग नहीं किया।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द वेदान्त सम्प्रदाय के तत्वज्ञानी थे। वे आधुनिक युग में वेदान्त दर्शन के एक महान् निर्वचनकर्ता हुए हैं। वे इस काल के प्रथम महान् हिन्दू थे जिन्होंने हिन्दू धर्म और दर्शन के सार्वभौम प्रचार के स्वप्न को पूरा करने का निरन्तर प्रयत्न किया। वे उस धर्म में राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे जिसमें हम हॉब्स, रूसो, ग्रीन अथवा बोसाक्वे को समझते हैं, क्योंकि उन्होंने इन दार्शनिकों की भाँति राजनीतिक चिन्तन का कोई सम्प्रदाय कायम नहीं किया। उन्होंने राजनीति दर्शन के आधारभूत प्रत्ययों का विश्लेषणात्मक अध्ययन नहीं किया। उन्होंने राजनीति प्रक्रिया तथा व्यवहार की प्रेरक शक्तियों की गहराई में बैठने का प्रयत्न किया। किन्तु आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में उनका स्थान है। इसके दो कारण हैं : प्रथम, उनकी शिक्षाओं तथा व्यक्तित्व का बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे महान् देशभक्त थे और मातृभूमि के लिए उनके मन में ज्वलन्त प्रेम था। वे देश की एकता का स्वप्न देखा करते थे। उनकी धीर आत्मा सदैव स्वतंत्रता के लिए लालायित रहती थी। यद्यपि प्रधानतः उन्होंने आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की धारणा का ही सन्देश दिया, किन्तु उनके इस सन्देश का अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक आदि अन्य प्रकार की स्वतन्त्रता के विचार भी लोकप्रिय हुए। बंगाल के अनेक आतंकवादियों तथा राष्ट्रवादियों ने उनकी 'संन्यासी का गीत' शीर्षक कविता से स्वतंन्त्रता के मूल्य तथा पवित्रता का पाठ सीखा। इस कविता में विवेकानन्द ने उन्मुक्त स्वर में स्वतन्त्रता का गुणगान किया है:

अपनी बेड़ियों को तोड़ डाल! उन बेड़ियों को जिन्होंने तुझे बाँधकर डाल रखा है।
वे दीप्तिमान सोने की हों, अथवा काली निम्नकोटि की धातु की;
प्रेम, घृणा, शुभ, अशुभ-द्वैधता के सभी जंजालों को तोड़ डाल।
तू समझ ले कि दास दास है, उसे प्रेमपूर्वक पुचकारा जाय, अथवा कोड़ों से पीटा जाय वह स्वतन्त्र नहीं है;
क्यों कि बेड़ियाँ सोने की ही क्यों न हों, बाँधने के लिए कम मजबूत नहीं;
इसलिए हे वीर संन्यासी! उन्हें उतार फेंक और बोल- 'ओम् तत् सत् ओम्'!

x x x x x x

तू कहाँ ढूँढ रहा है? तुझे वह स्वतन्त्रता न यह लोक दे सकता है और न वह।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

व्यर्थ में तू ढूँढ रहा है ग्रन्थों और मन्दिरों में।
तेरा अपना ही तो हाथ है जो उस रज्जु को पकड़े हुए है जो तुझे घसीट रहा है।
इसलिए तू विलाप करना छोड़ दे।
रज्जु को हाथ से जाने दे, हे वीर संन्यासी । और बोल- 'ओम् तत् सत् ओम्'!

विवेकानन्द ने कर्मयोग का सन्देश दिया। राजनीतिक जीवन में इस सन्देश का भी पूर्णतः भिन्न अर्थ लगाया गया। आगे की पीढ़ियों ने इसका अर्थ समझा कि मातृभूमि की निष्काम सामाजिक तथा राजनितिक सेवा भी कर्मयोग का उदाहरण है। विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के नैतिक आधार को चुनौती नहीं दी। किन्तु उनका सम्पूर्ण जीवन और व्यक्तित्व भारतीय चीजों के प्रति प्रेम और सम्मान का जीवन्त उदाहरण था, इसलिए अप्रत्यक्ष रूप से वे विदेशी आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह के स्पष्ट प्रतीक बन गये। दूसरे विवेकानन्द ने हमें भारतीय समाज के विकास के सम्बन्ध में कुछ नये विचार दिये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने उस समय की कुछ ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए भी कटुता से अपने विचार व्यक्त किये जिनका तत्काल हल करना आवश्यक हो गया था। अतः आधुनिक भारत के सामाजिक चिन्तन के विकास को व्यवस्थित ढंग से समझने के लिए आवश्यक है कि विवेकानन्द के विचारों का विवेचन किया जाय।

२. राजनीतिक चिन्तन के दार्शनिक आधार : वेदान्त और राजनीति

विवेकानन्द के दर्शन के तीन मुख्य स्रोत हैं। प्रथम, वेदों तथा वेदान्तों की महान् परम्परा। शंकराचार्य विश्व के एक महानतम तत्वज्ञानी माने गये हैं, उन्हें अपने चिन्तन के लिए प्रेरणा इन्हीं ग्रन्थों से मिली थी। रामानुज, माधव, वल्लभ तथा निम्बार्क के सम्बन्ध में भी यही कहा सकता है। विवेकानन्द की मेधा विशाल थी। कहा जाता है कि उन्होंने 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के ग्यारह खण्डों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन्हें अपने देश के साहित्य का ही गम्भीर ज्ञान नहीं था, बल्कि पश्चिम के प्लेटो से स्पेंसर तक के तत्वशास्त्रीय साहित्य में भी उनकी अद्‌भुत गति थी। पश्चिम की वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी परिचय था। वे अद्वैत वेदान्त के सन्देशवाहक थे और अद्वैत सम्प्रदाय के भाष्यकारों की परम्परा में उनका स्थान है। यद्यपि वे अद्वैतवादी तथा मायावादी थे, किन्तु उनकी बुद्धि समन्वयकारी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

थी, इसलिए उनकी व्याख्या की अपनी विशेषताएँ हैं। अतः यह कहना सर्वथा अनुपयुक्त होगा कि उनकी वेदान्त सम्बन्धी रचनाएँ शंकर के सम्प्रदाय का केवल अंग्रेजी अथवा आधुनिक संस्करण हैं। उनमें चीजों की तह तक पहुँचने की मौलिक प्रतिभा थी, जो उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखायी देती है। विवेकानन्द के दर्शन का दूसरा शक्तिशाली स्रोत उनका रामकृष्ण (१९३६-१९८६) के साथ सम्पर्क था। रामकृष्ण आधुनिक भारत के एक महानतम सन्त तथा रहस्यवादी हुए हैं। रहस्यवाद ने कभी-कभी दर्शन की सहायता की है। हम जानते हैं कि पाइथागोरस और प्लेटो, इन दो यूनानी विचारकों के दर्शन को यूनान के रहस्यवादी सम्प्रदायों ने बहुत कुछ प्रेरणा दी थी। रामकृष्ण को रहस्यवादी अनुभूतियाँ उसी प्रकार से उपलब्ध हुई थीं जिस प्रकार बुद्ध को। दोनों ने अपनी इन्द्रियों को वश में करने के लिए घोर निग्रह और तपस्या का मार्ग अपनाया था, और दोनों ने ही सत्य का दर्शन करने के लिए अनेक दिन और रात्रियाँ व्याकुलता से बितायी थीं। रामकृष्ण के उपदेशों और प्रवचनों की शैली में हमें सन्देशवाहकों की सी सरलता तथा स्पष्टता देखने को मिलती है, किन्तु विवेकानन्द में दार्शनिक तथा धार्मिक उपदेश दोनों का सम्मिश्रण था। इसलिए उन्होंने उन्हीं अनेक सत्यों को दर्शन की भाषा और आधुनिक पदावली में प्रस्तुत किया। विवेकानन्द के दर्शन का तीसरा स्रोत उनके अपने जीवन का अनुभव था। उन्होंने विस्तृत जगत् का भ्रमण किया, और इस प्रकार इन्हें जो अनुभव हुआ उसका उन्होंने अपनी प्रौढ़ तथा कुशाग्र बुद्धि से निर्वचन और व्याख्या की। इस प्रकार जिन अनेक सत्यों का उन्होंने उपदेश दिया उनकी उपलब्धि उन्हें अपने अनुभवों का मनन करने से ही हुई थी। इसलिए उनके दर्शन की जड़ें जीवन में हैं। उनका दर्शन केवल तात्विक और प्रत्ययात्मक नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन से भी उसका सम्बन्ध है। आधुनिक यूरोपीय तथा अमेरिका दर्शन का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसका जीवन से सम्पर्क टूट गया है। यह भाषाशास्त्रीय विश्लेषण के घने जंगल में विलुप्त सा होता जा रहा है। तर्क का ऐसा धुंधला प्रतीकवाद जिसका जीवन से संस्पर्श नहीं है, निरर्थक तथा निष्फल है। किन्तु विवेकानन्द का दर्शन जीवनदायी तथा गतिशील है।

विवेकानन्द के दर्शन का पूर्ण विवरण प्राप्त करने के लिए हमें उनके सम्पूर्ण ग्रंथों का अवगाहन करना पड़ेगा। उनकी रचनाओं के शुद्ध दार्शनिक अंश निम्न हैं (१) ज्ञानयोग,
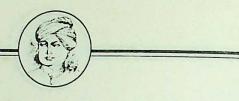
(२) पातंजलि सूत्रों पर भाष्य, तथा (३) वेदान्त दर्शन पर भारत और पश्चिम में दिये गये विभिन्न व्याख्यान। उनका राजनीति दर्शन उनकी तीन रचनाओं में सन्निहित है 'कोलम्बो से अल्मोड़ा तक व्याख्यान', 'पूर्व तथा पश्चिम' और 'आधुनिक भारत'।

विवेकानन्द के दर्शन का सार ब्रह्म अथवा सच्चिदानन्द की धारणा है। ब्रह्म का अर्थ है परम सत् और सच्चिदान्द से अभिप्राय है परम शुद्ध सत्, ज्ञान तथा आनन्द। सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म के गुण नहीं हैं, वे स्वयं ब्रह्म हैं। वे तीन पृथक् वस्तुएँ अथवा सत्ताएँ नहीं हैं, वास्तव में वे तीन होते हुए भी एक हैं। ब्रह्म परम सत् (सर्वोच्च सत्ता) और परम सत्य है। वह आध्यात्मिक अनुभूतियों के रूप में ही अपने को व्यक्त करता है। विवेकानन्द ने जिस वेदान्त के ब्रह्म को स्वीकार किया वह न तो हेगेल का स्थूल परमतत्व है, न माध्यमिकों का शून्य और न योगाचारियों का अलयविज्ञान। उसका अश्वघोष के तथत से कुछ साम्य है। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि अश्वघोष ने तथत की रहस्यात्मक अनुभूति पर बल नहीं दिया है।

स्वामी विवेकानन्द माया के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। अतः उनके अनुसार काल, प्रसर तथा कार्य-कारण नियम की सार्थकता दृश्य जगत् तक ही सीमित है। अपने ज्ञानयोग में उन्होंने मायावाद का अनुप्रेरित तथा अलंकृत भाषा में समर्थन किया है। उनका कहना है कि माया कोई सिद्धान्त नहीं है, बल्कि तथ्य है। किन्तु अनेक आलोचक माया के सिद्धान्त को अद्वैत दर्शन का सबसे दुर्बल पक्ष मानते हैं। शुद्ध तर्क और विज्ञान के आधार पर माया के सिद्धान्त का मण्डन करना असम्भव प्रतीत होता है। विवेकानन्द ने माया के सिद्धान्त का जो मण्डन किया वह भी बहुत कुछ वाक्-चातुर्य पर आधारित है। उनका कहना है "अनन्त सान्त क्यों बना, इस प्रश्न का उत्तर देना सम्भव है क्योंकि इसमें अन्तर्विरोध है।" उन्होंने माया का जो मण्डन किया उसमें साहित्यिक शब्दजाल की भरमार है, किन्तु वह विश्व की अवास्तविकता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है। व्यक्तिगत मृत्यु और विनाश की दृष्टि से विश्व माया है, मृगमरीचिका है, किन्तु व्यक्तियों की मृत्यु के बावजूद विश्व की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है।

परम ज्ञान की अवस्था में परम सत् का जिस रूप में दर्शन होता है, वही ब्रह्म है। धार्मिक

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आराधना के स्तर पर वही सत् ईश्वर है। विवेकानन्द ने लिखा है "अद्वैत दर्शन में सम्पूर्ण विश्व एक सत्ता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं। वही सत्ता जब विश्व के मूल में प्रकट होती है तो उसी को ईश्वर कहा जाता है। वही सत्ता जब इस लघु विश्व अर्थात् शरीर के मूल में प्रकट होती है तो आत्मा कहलाती है। ....सार्वभौम आत्मा जो प्रकृति के सार्वभौम विचारों से परे है वही ईश्वर-परमेश्वर- है। ईश्वर इस सृष्टि का कर्ता, धर्ता तथा हर्ता है। वह इस विश्व तथा इसकी होतव्यता का वैयक्तिक शासक और अधिष्ठता है। विवेकानन्द तथा रामकृष्ण पर तांत्रिक सम्प्रदाय का भी प्रभाव था। तांत्रिक लोग ब्रह्माण्ड की सृजनात्मक शक्ति को भी ईश्वरीय मानते हैं और उसे परम माता, जगदम्बा, कहते हैं।

विवेकानन्द के अनुसार जीव तत्वतः ब्रह्म ही है। कुछ अंश में विवेकानन्द पर सांख्य दर्शन का भी प्रभाव था। जीवों की अनेकता का सिद्धान्त उन्होंने सांख्य से लिया, किन्तु सच्चे अद्वैतवादी की भांति उनका विश्वास है कि अन्ततोगत्वा सब जीव ब्रह्म ही हैं। भौतिक तथा मानसिक बन्धनों में बँधे हुए आत्मा को जीव कहते हैं। विवेकानन्द का दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य की आत्मा स्वभावतः शुद्ध तथा शुभ है। किन्तु प्रकृति के संसर्ग से उसमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विवेकानन्द को ईसाइयों की इस धारणा पर भारी आश्चर्य होता था कि आत्मा स्वभावतः पापी है। वे आत्मा को पापी मानने को ही महान् पाप मानते थे। उन्होंने कहा कि मनुष्य के कर्मों से जो प्रभाव और प्रवृत्तियाँ (संस्कार) उत्पन्न होती हैं उनका समग्र ही उसका चरित्र है। इस प्रकार मनुष्य का कर्म ही उसका चरित्र है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है, इसलिए यदि आन्तरिक और बाह्य प्रकृति को नियन्त्रित करने का सतत् प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य अवश्य ही ईश्वरत्व की प्राप्ति कर सकता है। उनका कहना था कि सृष्टि में मनुष्य उच्चतम प्राणी है, क्योंकि केवल वही स्वतन्त्रता प्राप्त करने योग्य है।

विवेकानन्द कपिल को भारत के बुद्धिवादी दर्शन का जनक मानते थे। उनका यह भी विश्वास था कि यूनानी दर्शन के विकास पर सांख्य का प्रभाव था। उन्होंने गुणों का अर्थ शक्तियाँ लगाया है, और इस प्रकार सांख्य की कुछ अंशों में वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने परमाणुवीय सिद्धान्त का इस आधार पर खण्डन किया कि यदि बिना आकार के परमाणुओं को अनन्त गुना कर दिया जाय तो भी वे विश्व का निर्माण नहीं कर सकेंगे। उन्होंने लिखा है : " परमाणु का विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा

में विलयन होना वेदान्त के इस दावे का समर्थन करता है कि ब्रह्माण्ड का आधार सूक्ष्म ऊर्जा है न कि अगणित परमाणु। अन्य अनेक चीजों की भाँति (उदाहरण के लिए एकलवाद) यहाँ भी विज्ञान वेदान्त के दावे की पुष्टि करता है।'' क्लार्क-मैक्सवेल तथा हाइनरिख हैंट्ज़ के विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा के सिद्धान्त का अनेक प्रकार से निर्वचन किया गया है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्व में निरन्तर गति की धारणा की पुष्टि करने के लिए इस सिद्धान्त का प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत विवेकानन्द का विश्वास था कि इस सिद्धान्त से वेदान्त की उस प्रस्थापना की पुष्टि होती है कि विश्व में एकात्मक सर्वव्यापी ऊर्जा ही प्रधान है।

३. विवेकानन्द के चिन्तन में इतिहास-दर्शन

स्वामी विवेकानन्द ने इतिहास का कोई सुव्यवस्थित सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया। किन्तु इस विषय में उनके कुछ स्फुट विचार हैं जिन्हें एकत्र करके एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। यद्यपि वे रहस्यवादी और वेदान्ती थे तथा ब्रह्म को परम सत् मानते थे, फिर भी उन्होंने विश्व के विकास के सम्बन्ध में कुछ विचार-विमर्श किया है। उनकी धारणा थी कि विश्व का इतिहास चार सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति है जिनका स्थूल रूप हमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र. इन चार सामाजिक वर्णों में मिलता है। आध्यात्मिक सिद्धान्त भारतीय इतिहास में पिण्डीभूत हुआ, रोमन प्रसार तथा साम्राज्यवाद का इतिहास सैनिक (क्षत्रिय) तत्व का द्योतक था, ब्रिटिश वाणिज्यवादी अभिजाततन्त्र का युग वैश्य तत्व के साक्षात् उत्कर्ष का प्रतिनिधित्व करता है, और अमेरिकी लोकतन्त्र भविष्य के शूद्रतन्त्र का प्रतिनिधि है। विवेकानन्द का विचार था कि पूर्व सामान्यतः कष्ट-सहन के आदर्श का प्रतीक है और पश्चिम कर्म तथा संघर्ष के सिद्धान्त का प्रतिनिधि है।

विवेकानन्द मंगोल जाति की शक्ति तथा स्फूर्ति की प्रशंसा किया करते थे। उनके शब्द हैं ''तातर मनुष्य जाति की मदिरा है। वह हर रक्त को शक्ति तथा बल प्रदान करता है।'' उनका यह दृष्टिकोण उन लोगों के मत के विरुद्ध है जो कोहकाफ अथवा नॉर्डिक जाति की सर्वोच्चता का प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने चंगेजखाँ को इस बात का श्रेय दिया है कि वह राजनीतिक एकता के आदर्श का पोषक था। उनका कहना है कि सिकन्दर, चंगेजखाँ और नैपोलियन विश्व के एकीकरण के

आदर्श से अनुप्राणित थे। विवेकानन्द ने अपनी चीन तथा जापान की यात्राओं के दौरान अनेक मन्दिरों के दर्शन किये जहाँ उन्होंने पुरानी बंगला लिपि में संस्कृत की अनेक पाण्डुलिपियाँ देखीं। उन्होंने जापानी मन्दिर देखे जिनकी दीवारों पर पुराने बँगला अक्षरों में संस्कृत के मन्त्र उत्कीर्ण थे। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मध्य युग के चीन तथा बंगाल के बीच घनिष्ठ आदान-प्रदान रहा होगा। उन्हें वैदिक तथा रोमन कैथोलिक कर्मकाण्डों के बीच साम्य दिखायी दिया। उनका विश्वास था कि रोमन कैथोलिकों के अनुष्ठान बौद्ध धर्म के द्वारा वैदिक धर्म से लिये गये होंगे, और बौद्ध धर्म हिन्दुत्व की ही एक शाखा था।

विवेकानन्द का विश्वास था कि ईसा मसीह ऐतिहासिक व्यक्ति थे। किन्तु वे ईसा मसीह के स्थूल व्यक्तित्व को ईश्वरीय अवतार मानते थे। उनके मतानुसार यह भी सम्भव है कि सिकन्दरिया में भारतीय तथा मिस्रीधर्मों का सम्मिश्रण हुआ हो, और फिर उन्होंने ईसाईयत के विकास को प्रभावित किया हो।

विवेकानन्द के अनुसार वेदान्त संन्यासियों एवं चिन्तनशील दार्शनिकों का दर्शनमात्र नहीं था, बल्कि सभ्यता के विकास में भी उनका महत्वपूर्ण योग था। उन्होंने माना कि भारतीय चिन्तन ने पाइथागोरस, सुकरात, प्लेटो और पोरफीरी, आयब्लीकस आदि नव-प्लेटोवादियों को भी प्रभावित किया था। मध्ययुग में भारतीय चिन्तन का स्पेन में प्रवेश हुआ। मूर लोग ने स्पेन पर प्रभाव डाला, और अरबों के विज्ञान ने यूरोपीय संस्कृति के निर्माण में योग दिया। आधुनिक युग में भारतीय विचारधारा यूरोप को, विशेषकर जर्मनी को, प्रभावित कर रही है।

विवेकानन्द का विश्वास था कि प्राचीन भारत में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के बीच द्वन्द्वात्मक संघर्ष चला था। ब्राह्मण इस पक्ष में थे कि संस्कृति के क्षेत्र में जो मानक, प्रामाणिक और अनन्य मूल्य हैं उन्हीं को अंगीकार किया जाय। वे अपने को परम्परागत तथा रूढ़िगत संस्कृति का संरक्षक मानते थे। अतः वे पुरातनपोषी ऐतिहासिक दृष्टिकोण के प्रतिनिधि थे और रूढ़ियों, परम्पराओं, परिपाटियों तथा आचरण के संस्थाबद्ध आदर्शों के समर्थक थे। इसके विपरीत क्षत्रीय लोग उग्र उदारवाद के पोषक थे। वे राष्ट्र की उदीयमान बन्धननाशक प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि थे, और अपने विचारों में विद्रोही तथा भावुक थे। राम और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कृष्ण का भी सम्बन्ध क्षत्रिय अभिजात वर्ग से था। बुद्ध ने क्षत्रियों के विद्रोह का समर्थन किया। इसके विपरीत कुमारिल, शंकर तथा रामानुज ने पुरोहित वर्ग की शक्ति की पुनः स्थापना करने का प्रयत्न किया, किन्तु उस कार्य में वे असफल रहे। मेरा भी विचार है कि भारत में ऐतिहासिक परिवर्तनों और रूपान्तरों के मूल में जो द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया देखने को मिलती है उसके पीछे ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की पारस्परिक सामाजिक शत्रुता तथा संघर्ष सम्भवतः प्रेरक तत्व थे। इस प्रकार भारतीय इतिहास की व्याख्या करना कुछ सीमा तक समीचीन प्रतीत हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास के रहस्यों की केवल इसी एक तत्व के आधार पर व्याख्या करना अनुपयुक्त होगा। आधुनिक सामाजिक विज्ञानों ने हमें सिखाया है कि सामाजिक विकास और परिवर्तनों के मूल में अनेक तत्व काम किया करते हैं, अतः भारत के इतिहास को समुचित ढंग से समझने के लिए हमें राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि अनेक सक्रिय तत्वों का अध्ययन तथा विश्लेषण करना पड़ेगा।

हेगेल की भांति विवेकानन्द को भी राष्ट्र के ध्येय में विश्वास था। उनका विचार था कि भारतीय संस्कृति की नींव आध्यात्मिक है इसलिए पश्चिम के लिए उनका विशेष ध्येय, सन्देश है। पश्चिम के लोग भौतिक, शारीरिक तथा व्यापारिक सन्तोष और सफलताओं में आवश्यकता से अधिक व्यस्त है। इसलिए पश्चिमी संस्कृति में उन गम्भीर धार्मिक मूल्यों को समाविष्ट करना आवश्यक है जिसका पोषण और समर्थन पूर्व के ऋषियों-मुनियों ने किया है। विवेकानन्द ने भविष्यवाणी की थी कि अन्ततोगत्वा भारतीय विचारधारा इंग्लैण्ड को विजय कर लेगी।

विवेकानन्द का कथन था कि भारत की प्रतिभा प्रथमतः तथा मुख्यतः दर्शन तथा धर्म में व्यक्त हुई है। भारतीय संस्कृति के नेताओं का प्रधान उद्देश्य उन शाश्वत सत्यों का साक्षात्कार करना रहा है जिनका प्रतिपादन धर्मग्रन्थों में किया गया है। अपने अधिक उमंग के क्षणों में वे कहा करते थे कि पश्चिम के मनुष्य को भौतिकवाद ने जिस दलदल में फँसा दिया उनका उद्धार करने के लिए वेदान्त के अध्यात्मवाद की आवश्यकता है। किन्तु उन्होंने देश-देशान्तरों का पर्यटन करके जो अनुभव प्राप्त किया था उसके कारण वे विज्ञान के महत्व को भी भलीभाँति समझते थे। अतः वे इस पक्ष में थे कि चिन्तन के भारतीय आदर्श और बाह्य प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित करने के पाश्चात्य

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आदर्श के बीच ऐक्य स्थापित किया जाय।

विवेकानन्द ने कश्मीर के धार्मिक इतिहास को चार युगों में विभक्त किया (१) अग्नि तथा नाग-पूजा, (२) बौद्ध धर्म-मूर्तिकला इस युग की कला की सबसे बड़ी विशेषता थी, (३) सूर्य-पूजा के रूप में हिन्दू धर्म और (४) इस्लाम।

४. सामाजिक मन्तव्य

विवेकानन्द को प्राचीन भारत की वर्ण-व्यवस्था में साकार हुए सामाजिक सामंजस्य तथा समन्वय के आदर्श से प्रेरणा मिली थी। इसलिए उनकी हार्दिक इच्छा थी कि जाति-प्रथा को उदात्त बनाया जाय। तत्व की बात यह नहीं है कि समाज पर नीरस एकरूपता की कोई व्यवस्था थोप दी जाय, आवश्यता इस बात की है कि हर व्यक्ति को सच्चे ब्राह्मण का पद प्राप्त करने में सहायता दी जाय। किन्तु उन्होंने पुरोहित कर्म की कटु शब्दों में निन्दा की, क्योंकि उससे सामाजिक अत्याचार को कायम रखने में सहायता मिलती थी, और जनता की उपेक्षा होती थी। इसलिए यद्यपि विवेकानन्द भारत के सांस्कृतिक महानता के स्पष्टवादी प्रचारक थे, किन्तु साथ ही साथ उन्होंने प्रचलित सामाजिक अनुदारता के विरुद्ध विध्वंसकारी योद्धा की भांति संघर्ष किया।

विवेकानन्द ने परम्परावादी ब्राह्मणों के पुरातन अधिकारवाद के सिद्धान्त का खण्डन किया। यह सिद्धान्त शूद्रों अर्थात् देश की बहुसंख्यक जनता को वैदिक ज्ञान के लाभ से वंचित करता है। शंकर ने भी इस लोकतन्त्र-विरोधी मतवाद को स्वीकार किया था। किन्तु विवेकानन्द ने निर्भीकता से आध्यात्मिक समता के आदर्श का पक्षपोषण किया। उनका कथन था कि सभी मनुष्य समान है, और सभी को आध्यात्मिक अनुभूति तथा परम ज्ञान का अधिकार है। उनका लोकतान्त्रिक अध्यात्मवाद वास्तव में एक क्रांतिकारी आदर्श था। उपनिषदों तक ने किसी न किसी रूप में आधिकारवाद का समर्थन किया है, जो एक प्रकार से आध्यात्मिक अभिजाततन्त्र का पक्षपोषण है। किन्तु विवेकानन्द चाहते थे कि परम सत्य का बिना किसी शर्त के व्यापक प्रचार किया जाय। उन्होंने कहा ''इस प्रकार तुम जनता को सबसे बड़ा वरदान दोगे, उसके बन्धनों को तोड़ोगे और सम्पूर्ण राष्ट्र का उद्धार करोगे।''

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द ने अस्पृश्यता की भर्त्सना की। उन्होंने रसोईघर और पतीली-कढ़ाई के निरर्थक पंथ का मखौल उड़ाया। इसकी अपेक्षा वे चाहते थे कि आत्म-साक्षात्कार, आत्म-निग्रह और लोकसंग्रह की धार्मिक भावना जाग्रत की जाय।

आधुनिक विश्व में विभिन्न समूहों तथा वर्गों के अधिकारों के समर्थकों के बीच निरन्तर संघर्ष चल रहा है। फलस्वरूप समाज धीरे-धीरे अधिकारों के परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों की सफलता के लिए युद्ध का अखाड़ा बनता जा रहा है। किन्तु विवेकानन्द ने कर्तव्यों को महत्व दिया। वे चाहते थे कि सभी व्यक्ति और समूह अपने कर्तव्यों और दायित्वों के पालन में ईमानादार हो। मानव प्राणी का गौरव इस बात में नहीं है कि वह अपने तथा अपने अधिकारों के लिए आग्रह करे, उसकी गरिमा इस बात में है कि वह सार्वभौम शुभ की सिद्धि के हेतु अपना उत्सर्ग कर दें। इसलिए यद्यपि स्वामी विवेकानन्द स्वयं भिक्षु और संन्यासी थे, किन्तु उन्होंने निष्काम भाव से अपना कर्तव्य करने वाले गृहस्थ को सर्वोच्च स्थान दिया।

सामाजिक परिवर्तनों के विषय में अरस्तू की भांति विवेकानन्द भी मिताचार में विश्वास करते थे। सामाजिक परिपाटियाँ समाज की आत्म-परिक्षण की व्यवस्था का परिणाम हुआ करती हैं। किन्तु यह परिपाटियाँ स्थायी रूप से कायम रहें तो समाज के अधःपतन का भय उपस्थित हो जाता है। लेकिन पुराने सामाजिक नियमों को हटाने का तरीका यह नहीं है कि उन्हें हिंसा द्वारा नष्ट किया जाय। सही ढंग यह है कि जिस कारणों से ये नियम और परिपाटियाँ स्वतः विलुप्त हो जाएँगी। केवल उसकी भर्त्सना और निन्दा करने से अनावश्यक सामाजिक तनाव और शत्रुता उत्पन्न होती है और लाभ कुछ नहीं होता। हिन्दू समाज अपनी जीवन-शक्ति बनाये रखने में इसलिए सफल हुआ था कि उसमें परिपाचन की सामर्थ्य थी। यदाकदा वह आक्रामक हो गया था, किन्तु उसका बुनियादी रवैया यही था कि जिन शक्तियों के साथ सम्पर्क हो उनके सर्वोत्तम तत्वों को आत्मसात कर लिया जाय। उसके दीर्घजीवी होने का रहस्य उनकी परिपाचन की उदार तथा रचनात्मक क्षमता ही थी। अतः विवेकानन्द ने उग्र क्रान्तिकारी परिवर्तनों की अपेक्षा अवयवी ढंग से और धीमे सुधार का समर्थन किया। उन्होंने सामाजिक जीवन में यूरोप का अनुकरण करने की कटु आलोचना की। उन्होंने लिखा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है हमें अपनी प्रकृति के अनुसार ही विकसित होना चाहिए। विदेशियों ने जो जीवनप्रणाली हमारे ऊपर थोप दी है उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। ऐसा करना असम्भव भी है। परमात्मा का ध्यानवाद है कि यह असम्भव है, हमें तोड़-मरोड़कर अन्य राष्ट्रों की आकृति का नहीं बनाया जा सकता। मैं अन्य जातियों की संस्थाओं की निन्दा नहीं करता, वे उनके लिए अच्छी हैं, किन्तु हमारे लिए अच्छी नहीं है। उनकी विधाएँ, उनकी संस्थाएँ तथा परम्पराएँ भिन्न हैं और उन सबके अनुरूप ही उनकी वर्तमान-प्रणाली है। हमारी अपनी परम्पराएँ हैं और हजारों वर्षों के कर्म हमारे साथ हैं, इसलिए स्वभावतः हम अपनी ही प्रकृति का अनुसरण कर सकते हैं, अपनी ही लकीर पर चल सकते है, और हम वही करेंगे। हम पाश्चात्य नहीं बन सकते, इसलिए पश्चिम का अनुकरण करना निरर्थक है। यह मान भी लिया जाये कि आप पश्चिम की नकल कर सकते है, तो आप उसी क्षण मर जायेंगे, आपमें जीवन शेष नहीं रह जायेगा। इस सरिता का उस समय उद्गम हुआ, जब काल का भी प्रारम्भ नहीं हुआ था और मानव इतिहास के करोड़ों युगों को पार करती हुई बहती चली आयी है, क्या आप उस सरिता को पकड़कर उसके उद्गम हिमालय के किसी हमनद की ओर मोड़ देना चाहते हैं? चाहे वह भी सम्भव हो सके, किन्तु आपके लिए अपना यूरोपीकरण करना असम्भव है। जब आप देखते हैं कि यूरोपवासियों के लिए अपनी कुछ शताब्दियों पुरानी संस्कृति को छोड़ देना सम्भव नहीं है तो फिर आप अपनी बीसियों शताब्दी पुरानी जगमगाती हुई संस्कृति का परित्याग कैसे कर सकते हैं? यह नहीं हो सकता। अतः भारत का यूरोपीकरण करना असम्भव तथा मूर्खतापूर्ण काम है।

५. राजनीतिक दर्शन

हेगेल की भाँति विवेकानन्द का भी विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र का जीवन किसी एक प्रमुख तत्व की अभिव्यक्ति है। उदाहरण के लिए, धर्म भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण नियामक सिद्धान्त रहा है। विवेकानन्द लिखते हैं "जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वर होता है वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब तत्व उसी में केन्द्रित होते हैं। प्रत्येक राष्ट्र का अपना तत्व है, अन्य सब वस्तुएँ गौण होती हैं। भारत का तत्व धर्म है। समाज-सुधार तथा अन्य कुछ गौण है।" इसलिए उन्होंने राष्ट्रवाद के एक धार्मिक सिद्धान्त की नींव का निर्माण करने के लिए

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

कार्य किया। आगे चलकर उसी सिद्धान्त का विपिनचन्द्र पाल तथा अरविन्द ने समर्थन और पक्षपोषण किया। विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद के धार्मिक सिद्धान्त का प्रतिपादन इसलिए किया था। राजनीतिक स्वन्त्रता तथा सामाजिक न्याय की बात करने की अपेक्षा उन्होंने उससे भी अधिक बुनियादी आदर्श-शक्ति -का सन्देश दिया। बिना शक्ति के न हम अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को कायम रख सकते हैं और न अपने अधिकारों की रक्षा करने मे ही समर्थ हो सकते हैं। कोई व्यक्ति सतत प्रयत्नों और निरन्तर अध्यवसाय के द्वारा ही जीवन के संघर्ष में सफलता प्राप्त कर सकता है। मनुष्य का चरित्र बाधाओं का प्रतिरोध करने से ही विकसित होता है। एक सैद्धान्तिक तथा शिक्षक के रूप में विवेकानन्द ने देश को निर्भयता तथा शक्ति के दो महान् आदर्श प्रदान किये हैं। उनकी मुख्य विरासत यह है कि उन्होंने धर्म तथा जीवन का समन्वय किया, और कभी-कभी धर्म की राष्ट्रीय तथा व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या की। उदाहरण के लिए, उन्होंने कहा- "शक्ति ही धर्म है।" एक अन्य अवसर पर उन्होंने घोषणा की "मेरे धर्म का सार शक्त है। जो धर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है चाहे वह उपनिषदों का धर्म हो और चाहे गीता अथवा भागवत का। शक्ति धर्म से भी बड़ी वस्तु है और शक्ति से बढ़कर कुछ नहीं।" राजनीतिक दृष्टि से पददलित राष्ट्र को शक्ति और निर्भयता का सन्देश देना वास्तव में एक महान् राजनीतिक महत्व का सन्देश देने के समान है, क्योंकि 'मनुष्य-निर्माण' के पुरुषोचित सन्देश का ठोस राष्ट्रीय अभिप्राय है। विवेकानन्द ने निर्भयता के सिद्धान्त को दार्शनिक वेदान्त के आधार पर उचित ठहराया। उन्होंने बार-बार इस बात को दुहराया कि आत्म ही परम सत् है और इसलिए वह सभी प्रकार के सांसारिक प्रलोभनों और क्रूरता से परे है। उनकी दुर्दमनीय आत्मा को मनुष्य की आत्मा पर थोपे गये सभी प्रकार के प्रतिबन्धों से घृणा थी। इसलिए वे भारतीय जनता की आत्मा के अपार बल और शक्ति की शिक्षा देना चाहते थे। उनका कहना था कि आत्मा का लक्षण सिंह के समान है। वे चाहते थे कि मनुष्य में भी सिंह सी भावना का विकास हो। उन्होंने कहा कि हिन्दुत्व को आक्रामक बनना है।इस प्रकार विवेकानन्द ने चरित्र निर्माण के लिए वेदान्त की शिक्षाओं का प्रयोग किया। अभय वेदों तथा वेदान्त का सार है। गीता का क्रान्तिकारी सन्देश भी पुरुषत्व तथा शक्ति को ही महत्व देता है। विवेकानन्द ने कहाः "....राष्ट्र को शक्ति शिक्षा के द्वारा ही मिल सकती है।" उनके विचार में शक्ति के सन्देश का ओजपूर्ण समर्थन

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

करना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का सबसे अच्छा मार्ग था। आत्मबल के आधार पर निर्भय होकर खड़ा होना अत्याचार तथा उत्पीड़न का सर्वोत्तम प्रतिकार था। उन्होंने उस समय भारत में प्रचलित अत्याचारपूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आलोचना करने की नकारात्मक नीति नहीं अपनायी, बल्कि शक्ति के संग्रह पर भावात्मक बल दिया। अगस्त १८९८ में उन्होंने 'जाग्रत भारत के प्रति' शीर्षक कविता में लिखा :

एक बार पुनः जाग! यह तुम्हारी मृत्यु नहीं थी, यह तो केवल निद्रा थी, तुम्हें नवजीवन देने के लिए और तुम्हारे कमल-नेत्रों को विश्राम देने हेतु जिससे वे नये दृश्यों को देखने का साहस कर सकें। विश्व तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। हे सत्य! तुम्हारे लिए मृत्यु नहीं है।

तुम अपना चलना जारी रखो, तुम्हारे कदम इतने कोमल हों कि उनसे सड़क के किनारे नीचे पडी हुई धूल का भी शान्तिमय विश्राम भंग न हो। किन्तु वे दृढ़, अडिग, आनन्दमय, वीरतापूर्ण तथा स्वतन्त्र हों। जगाने वाले, निरन्तर आगे बढ़ता जा। बोल, एक बार पुनः बोल अपने प्राणोत्तेजक शब्द!

X X X X X X

और फिर चलना आरम्भ कर दें, अपनी उस जन्मभूमि से जहाँ मेघाच्छादित हिम तुम्हें आशीर्वाद देती है और तुममें शक्ति का संचार करती है जिससे कि तुम नये विस्मयकारी कार्य कर सको। आकाशगंगा तुम्हारे स्वर को अपने शाश्वत संगीत के साथ एकलय कर दे, और देवदार की छाया तुम्हें अनन्त शान्ति प्रदान करे।

और इन सबसे अधिक हिमालय की पुत्री उमा जो कोमल और पवित्र है, माता जो सर्वत्र शक्ति और जीवन के रूप में व्याप्त है, जो सारे कार्य करती है, जो एक से विश्व की रचना करती है, जिसकी अनुकम्पा से सत्य के द्वार खुल जाते हैं और सबमें एक के दर्शन होने लगते हैं, वह उमा तुम्हें अथक शक्ति प्रदान करे-और अनन्त प्रेम ही अथक शक्ति है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राष्ट्र व्यक्तियों से ही बनता है। इसलिए विवेकानन्द का अनुरोध था कि सब व्यक्तियों को अपने में पुरुषत्व, मानव गरिमा तथा सम्मान की भावना आदि श्रेष्ठ गुणों का विकास करना चाहिए। किन्तु इन वैयक्तिक गुणों की पूर्ति अपने पड़ोसी के प्रति प्रेम की भावात्मक भावना से होनी चाहिए। निःस्वार्थ सेवा की गम्भीर भावना के बिना राष्ट्रीय एकता और भ्रातृत्व की बात करना कोरी बकवास है। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति अपने अहं का देश और राष्ट्र की आत्मा के साथ तादात्मय कर दे। विवेकानन्द का मार्ग पश्चिम के उन समाजशास्त्रियों की तुलना में अधिक रचनात्मक है जो केवल राष्ट्रवाद के सामाजिक पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। उन्होंने व्यक्तिवादी तथा सामाजिक दृष्टिकोणों का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया है, किन्तु साथ ही साथ व्यक्तियों के नैतिक विकास के साथ उनका अधिक लगाव है। यह सत्य है कि राष्ट्र एक समुदाय है। किन्तु हम राष्ट्र की अवयवी प्रकृति का कितना ही गुणगान क्यों न करें, वास्तव में व्यक्ति ही राष्ट्रीय ढाँचे के घटक होते हैं, इसलिए जब तक व्यक्ति स्वस्थ, नैतिक तथा दयालु नहीं होते तब तक राष्ट्र की महानता तथा समृद्धि की आशा करना व्यर्थ है। अतीत में भारत के राष्ट्रीय जीवन का निर्माण समाजसेवा तथा व्यक्ति की मुक्ति के आदर्शों की नींव पर किया गया था। इन श्रेष्ठ आदर्शों को पुनः प्रतिष्ठित करना और शक्तिशाली बनाना है। इसलिए सेवा तथा त्याग को भारतीय राष्ट्र के पुनरुद्धार का तात्विक आधार बनाना आवश्यक है। इस प्रकार विवेकानन्द इस पक्ष में थे कि राष्ट्रीय एकता और सुदृढ़ता का आधार नैतिक हो। उन्होंने उत्प्रेरित शब्दों में भारतीयों को ललकारा "हे वीर! निर्भीक बनो, साहस धारण करो, इस बात पर गर्व करो कि तुम भारतीय हो और गर्व के साथ घोषणा करो, मैं भारतीय हूँ और प्रत्येक भारतीय मेरा भाई है। बोलो, ज्ञानहीन भारतीय, दरिद्र तथा अकिंचन भारतीय, ब्राह्मण भारतीय, अछूत भारतीय, मेरा भाई है। तुम भी अपनी कमर में एक लँगोटी बाँधकर गर्व के साथ उच्च स्वर में घोषणा करो, "भारतीय मेरा भाई है, भारतीय मेरा जीवन है, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारतीय समाज मेरे बाल्यकाल का पालना है, मेरे यौवन का आनन्द उद्यान है, पवित्र स्वर्ग, और मेरी वृद्धावस्था की वाराणसी है। "मेरे बन्धु बोलो, 'भारत की भूमि मेरा परम स्वर्ग है, भारत का कल्याण मेरा कल्याण है', और दिन-रात जपो और प्रार्थना करो, 'हे गौरीश्वर, हे जगत् जननी, मुझे पुरुषत्व प्रदान करो। हे शक्ति की माँ, मेरे दौर्बल्य को हर लो, मेरी पौरुषहीनता को हर लो- और मुझे मनुष्य बना दो!"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द प्रधानतः भिक्षु, धर्मोपदेशक तथा संन्यासी थे किन्तु उनके हृदय में जनता के लिए प्रगाढ़ प्रेम था। वे जनता की दशा देखकर सचमुच रोया करते थे। अपने उपदेशों तथा लेखों के द्वारा वे जनता की आकांक्षाओं तथा तीव्र वेदनाओं को वाणी देना चाहते थे। उनका कहना था कि दरिद्रों की दशा सुधारने के लिए उन्हें शिक्षा तथा धर्म का सन्देश देना आवश्यक है। उनके शब्द हैं "राष्ट्र के रूप में हम अपना व्यक्तित्व खो बैठे हैं, और यही इस देश में सब दुष्कर्मों की जड़ है। हमें देश को उसका खोया हुआ व्यक्तित्व वापस देना है, और जनता का उत्थान करना है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी ने उसको अपने पैरों से कुचला है। किन्तु अब उसके उत्थान की शक्ति भी भीतर से ही आनी चाहिए, अर्थात् परम्परानिष्ठ हिन्दू समाज में से। प्रत्येक देश में जो बुराइयाँ देखने को मिलती हैं वे धर्म के कारण नहीं हैं, बल्कि धर्मद्रोह के कारण हैं। इसलिए दोष धर्म का नहीं है, मनुष्यों का है।" अतः विवेकानन्द ने पुकार लगायी कि जनता का उत्थान किये बिना राजनीतिक मुक्तिकरण सम्भव नहीं है। जब जनता दुःखों और विपदाओं में पड़ी कराह रही हो और घोर नैराश्य में डूबी हुई हो ऐसे समय में निजी मुक्ति की बात सोचना निरर्थक है। उन्होंने उस समय की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भी आलोचना की, क्योंकि उनकी निगाह में यह जनता की दशा सुधारने के लिए कोई भावात्मक और रचनात्मक कार्य नहीं कर रही थी। एक बार अश्वनी कुमार दत्त ने एक भेंट में उनसे पूछा "किन्तु क्या आपको जो कुछ कांग्रेस कर रही है उसमें विश्वास नहीं है?" किन्तु निश्चय ही न कुछ से कुछ अच्छा है, और सोते हुए राष्ट्र को जगाने के लिए उसे सब ओर से धक्का लगाना अच्छा है। क्या आप मुझे बतला सकते हैं कि कांग्रेस जनता के लिए क्या करती आयी है? क्या आपका विचार है कि केवल कुछ प्रस्ताव पास करने से स्वतंत्रता मिल जायेगी? मेरा उसमें विश्वास नहीं है। सबसे पहले जनता को जगाना होगा। उसे भरपेट भोजन मिलने दीजिए, फिर वह अपना उद्धार स्वयं कर लेगी। यदि कांग्रेस उसके लिए कुछ करती है तो मेरी सहानुभूति कांग्रेस के साथ है।"

६. निष्कर्ष

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरान्त भारतीय राष्ट्रवाद के आधारभूत तत्वों के अध्ययन का महत्व बहुत बढ़ गया है। विवेकानन्द की रचनाओं तथा भाषणों ने बंगाल के राष्ट्रवाद की नैतिक नींव को सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों की दृष्टि से सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण

देश पर भी प्रभाव डाला है। जिस समय राष्ट्र उदासीनता, निष्क्रियता और निराशा में डूबा हुआ था, उस समय विवेकानन्द ने शक्ति तथा निर्भयता के सन्देश की गर्जना की। उन्होंने लोगों को शक्तिशाली बनने की प्रेरणा दी। शक्ति ही विवेकानन्द की भारतीय राष्ट्र को वसीयत है। जब भारत का बौद्धिक वर्ग पश्चिम का अनुकरण करने में व्यस्त था, उस समय उन्होंने निर्भीकतापूर्वक घोषणा की कि पश्चिम को भारत से बहुत कुछ सीखना है। विवेकानन्द की रचनाओं तथा उसके सन्देश को ध्यान में रखे बिना भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के जन्म तथा विकास को और १९०४ तथा १९०७ के बीच राजनीतिक साहित्य के स्वर में जो परिवर्तन हुआ उसे समझना सम्भव नहीं है।

विवेकानन्द का मत था कि भारत में दृढ़ और स्थायी राष्ट्रवाद का निर्माण धर्म के आधार पर ही किया जा सकता है। किन्तु उन पर पंथवादी संकीर्णता अथवा साम्प्रदायिकता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। उनकी दृष्टि में नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति के शाश्वत नियम ही धर्म हैं। उन्होंने अपनी निर्भीक दृष्टि द्वारा पहले से ही देख लिया था कि लूट का बँटवारा करने में संलग्न यान्त्रिक राष्ट्रवाद स्थायी नहीं हो सकता। राष्ट्र के अवयवी विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में उदारता, ब्रह्मचर्य, प्रेम, त्याग तथा निग्रह के गुण विद्यमान हों। विवेकानन्द की-सी सार्वभौम सहिष्णुता वाला व्यक्ति किसी धार्मिक पंथ अथवा सम्प्रदाय के विरुद्ध अत्याचार की अनुमति नहीं दे सकता था। उन्हें व्यक्तिगत विकास में विश्वास था, वे इस पक्ष में नहीं थे कि किसी पर धार्मिक विश्वास अथवा सामाजिक परिपाटियाँ बलात् थोपी जाएँ। अतः विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रवाद का धार्मिक आधार अरविन्द और विपिनचन्द्र पाल की राष्ट्रवादी धारणा के समतुल्य था।

विवेकानन्द सार्वभौमवाद के समर्थक थे। उनके लिए देशभक्ति एक शुद्ध और पवित्र आदर्श था, किन्तु उन्होंने मनुष्य के देवत्व का भी सन्देश दिया। उनके सन्देश के महान् प्रभाव का यही रहस्य था। उनका कथन था कि धर्म, रंग, लिंग आदि के मूल में वास्तविक मानव अन्तर्निहित है। टैगोर की भाँति विवेकानन्द को भी सार्वभौम मानव में विश्वास था। उनके अनुसार सार्वभौम बन्धुत्व का साक्षात्कार करने के लिए सार्वभौम मानव की गम्भीर कल्पना आवश्यक थी। जिस युग में विश्व संशयवाद, नाशवान् और भौतिकवाद से पीड़ित था उस समय अद्वैत वेदान्ती के रूप में विवेकानन्द

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ने सार्वभौम धार्मिक भावना को पुनर्जीवित करने का सन्देश दिया। उनकी दृष्टि में भारत का जागरण तथा मुक्ति सार्वभौम प्रेम तथा बन्धुत्व के साक्षात्कार की एक सीढ़ी थी।

विवेकानन्द का समाजशास्त्र

१. भारत के सामाजिक विकास का द्वन्द्व नियम

विवेकानन्द ने भारत के सामाजिक तथा राजनीतिक पतन के कारणों का अन्वेषण किया और सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन के उपाय बतलाए। विश्व उन्हें एक वेदान्ती के रूप में जानता है, भारत उनसे एक प्रचण्ड बौद्धिक तथा नैतिक पथ-प्रदर्शक के रूप में परिचित है, किन्तु हमें उनके जीवन को भारतीय इतिहास तथा राजनीति के अध्येता के रूप में भी समझना चाहिए। एक सिद्धान्तकार के नाते उन्होंने एशियाई तथा यूरोपीय संस्कृतियों की आत्माओं के बीच भेद किया। एशिया। एशिया के महान् देशों ने ईश्वर के प्रभुत्व तथा उसके शाश्वत नियमों को अधिक महत्व दिया है। यूरोप ने विज्ञान, यन्त्रशास्त्र, वाणिज्य, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र तथा राजनीति की सफलताओं का जय-जयकार किया है। उन्होंने कहा था, "यदि यूरोप, जो कि भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति है, अपनी स्थिति को नहीं समझता, अपनी स्थिति को परिवर्तित नहीं करता और आध्यात्मिकता को अपने जीवन का आधार नहीं बनाता तो वह पचास वर्ष के भीतर ध्वस्त हो जायेगा।" विवेकानन्द ने एशियाई जनता को राजनीतिक क्षमता का न्यून मूल्यांकन किया है। उनका कथन है, "एशिया की पुकार धर्म की पुकार है, यूरोप की पुकार विज्ञान की पुकार है।" इस दृष्टि से उनका अध्यात्मोन्मुखी समाजशास्त्र अनुपयुक्त जान पड़ता है। फिर भी यद्यपि विवेकानन्द दार्शनिक दृष्टि से लौकिक जगत् को प्रतीत (आभास) मात्र मानते थे, जैसा कि वेदान्त में प्रतिपादित किया गया है, किन्तु सामाजिक स्तर पर वे उत्पीड़न तथा अत्याचार की शक्तियों का डटकर सामना करने को तैयार रहते थे। उनकी वीर आत्मा सामाजिक शोषकों के साथ किसी प्रकार का समझौता सहन नहीं कर सकती थी।

स्वामीजी दार्शनिक प्रत्ययवादी थे। फिर भी उन्होंने अपने धार्मिक प्रवचन आधुनिक विश्व की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर दिये। वे संन्यासी थे तथा उन्हें रहस्यात्मक चीजों की अच्छी मनोवैज्ञानिक जानकारी थी, किन्तु साथ ही साथ वे देशभक्त भी थे और कष्टपीड़ित जनता की दुर्दशा

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को देखकर अत्यधिक व्यथित होते थे। हृदय से वे विद्रोही थे, इसलिए उन्होंने साहसपूर्वक घोषणा की कि जातिगत भेदभाव ब्राह्मणों के अविष्कार हैं। स्वामीजी चाहते थे कि भारतीय समाज के सभी वर्गों को जीवन में प्रगति करने के लिए समान अवसर मिलने चाहिए।

विवेकानन्द के सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का स्रोत उनकी यह वेदान्ती धारणा थी कि अन्तरात्मा सर्वशक्तिमान् तथा सर्वोच्च है, इसलिए उन्होंने पीड़ित जनता को अभयम्, एकता तथा शक्ति का क्रान्तिकारी सन्देश दिया। वे उन वर्गगत तथा जातिगत श्रेष्ठता के विचारों तथा अत्याचार का उन्मूलन करना चाहते थे जिन्होंने हिन्दू समाज को शिथिल, स्तरबद्ध तथा विघटित कर दिया है। उन्होंने अस्पृश्यता की बुराइयों की कटु भर्त्सना की और पाकशाला तथा पाकभाण्डों पर आधारित धर्म-कर्म की निन्दा की। वे समाज का सांगोपांग कायाकल्प करना चाहते थे, किन्तु उनका आग्रह था कि यह सब कुछ आध्यात्मिक आधार पर किया जाय। उन्हें केशवचन्द्र सेन तथा महादेव गोविन्द रानाडे सदृश उन समाज-सुधारकों की कार्य-शैली से सहानुभूति नहीं थी जो समाज का यूरोपीकरण करने के पक्ष में थे। वे कुछ सीमा तक समाज-सुधारक थे, किन्तु यह निश्चय है कि वे अतीत से पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद करने के पक्ष में नहीं थे।

एक सिद्धान्तकार के नाते उन्होंने वर्ण-विभाजन को बुद्धिसंगत सिद्ध करने का प्रयत्न किया, "जिस प्रकार हर व्यक्ति में सत्व, रजस् और तमस् में से कोई न कोई गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में उन गुणों में से कोई न कोई न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है जिनसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बनते हैं। किन्तु कभी-कभी उसमें इनमें से किसी एक गुण का विभिन्न अंशों में प्राधान्य रहता है और तद्नुसार उसकी अभिव्यक्ति होती है। किसी मनुष्य को उसके विभिन्न कार्यों की दृष्टि से देखिए। उदाहरण के लिए जब वह वेतन के लिए किसी व्यक्ति की सेवा करता है तो वह शूद्र है, जब वह स्वयं लाभ के लिए कोई व्यवसाय करता है तो उस समय वह वैश्य है, जब वह अन्याय का अन्त करके न्याय की स्थापना करने के लिए संघर्ष करता है तो उस स्थिति में उसमें क्षत्रिय के गुणों की अभिव्यक्ति होती है, और जब वह ईश्वर का ध्यान करता है अथवा ईश्वर विषयक वार्तालाप में संलग्न होता है तो उस समय वह ब्राह्मण बन जाता

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

है। अतः किसी व्यक्ति के लिए जाति से दूसरी जाति में परिवर्तित होना सम्भव है, अन्यथा विश्वामित्र ब्राह्मण और परशुराम क्षत्रिय कैसे बन जाते? जाति का उन्मूलन करना आवश्यक नहीं है, बल्कि उसे परिस्थितियों के अनुकूल बना लेना चाहिए। पुरानी व्यवस्था में इतना जीवन है कि उनमें से दो सौ नवीन व्यवस्थाओं का सृजन किया जा सकता है। जाति-व्यवस्था के उन्मूलन की कामना करना कोरी बकवास है.... जाति अच्छी चीज है। जीवन की समस्याओं को हल करने का वही एकमात्र साधन है। मनुष्यों के लिए समूह बनाना स्वाभाविक है तुम उससे बच नहीं सकते। तुम जहाँ कहीं भी जाओगे वहीं तुम्हें जाति देखने को मिलेगी।"

विवेकानन्द के अनुसार समाज का चार वर्णों में विभाजन आदर्श समाज-व्यवस्था का द्योतक है। ब्राह्मण पुरोहित ज्ञान के शासन और विज्ञानों की प्रगति के लिए है। क्षत्रिय का काम व्यवस्था बनाये रखना है। वैश्य वाणिज्य का प्रतिनिधि है और व्यापार के द्वारा ज्ञान के प्रसार में योग देता है। शूद्र समता की विजय का द्योतक है। यदि इन चार प्रमुख तत्वों का समन्वय किया जा सके तो वह आदर्श स्थिति होगी, क्योंकि ज्ञान, रक्षा, आर्थिक क्रियाकलाप तथा समानता निश्चय ही वांछनीय हैं। किन्तु इस प्रकार का समन्वय स्थापित करना कठिन है, क्योंकि हर वर्ग शक्ति को अपने हाथों में केन्द्रित करना चाहता है, और यही पतन का कारण है। ब्राह्मणों ने ज्ञान पर एकाधिकार स्थापित कर लिया और अन्य वर्णों को संस्कृति के क्षेत्र में बहिष्कृत कर दिया। क्षत्रिय क्रूर तथा अत्याचारी हो गये। वैश्य "शान्तिपूर्वक कुचलने और रक्त चूसने की शक्ति" की दृष्टि से अत्यन्त भयावह हैं।

इसलिए विवेकानन्द ने उच्च जातियों द्वारा किये गये उत्पीड़न और दमन के विरुद्ध विद्रोह किया। उनका कथन था, "किन्तु इसका अर्थ यह नहीं हैं कि ये विशेषाधिकार विद्यमान रहें। इन्हें कुचल दिया जाना चाहिए।" यह सत्य है कि हम कार्यात्मक विभाजन के लिए कितने ही उत्सुक क्यों न हों, वर्ण-व्यवस्था के अवांछनीय सामाजिक परिणाम अवश्य होंगे। हम देखते हैं कि १०वीं शताब्दी ई.पू. से छठी शताब्दी ई.पू. तक ब्राह्मणों ने अपनी सामाजिक श्रेष्ठता को सुदृढ़ बनाने के लिए विस्तृत धार्मिक और कर्मकाण्डी व्यवस्था को विकसित कर लिया था। जिसका बुद्ध ने खण्डन किया। ढाई हजार वर्ष उपरान्त पुनः जब मद्रास के ब्राह्मणों ने यह कहने का दुस्साहस किया कि स्वामी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विवेकानन्द को अब्राह्मण होने के कारण संन्यासी का वस्त्र धारण करने का अधिकार नहीं तो स्वामीजी ने उन्हें 'परियाओं का परिया' कहा।

समाज-सुधारक के रूप में स्वामीजी में दो प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। जिस समय वे बहुत ही प्रबुद्ध और अनुप्रेरित होते उस समय वे जाति-व्यवस्था के उन्मूलन की बात करते थे। किन्तु अन्य अवसरों पर विशेषकर जबकि वे परम्परावादी श्रोताओं के समक्ष बोलते तो समाज के अवयवी विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन करते थे। वस्तुतः ये दोनों प्रवृत्तियाँ परस्पर विरोधी नहीं हैं। वे केवल इस बात की द्योतक हैं कि यद्यपि विवेकानन्द जाति-व्यवस्था के उत्पीड़नकारी रूप तथा उसके नाम पर किये गये कुत्सित कृत्यों के घोर शत्रु थे, फिर भी तात्कालिक सामाजिक कार्यक्रम के ठोस कदम के रूप में व पूर्णता की ओर जाने के लिए विकासात्मक प्रगति का उपदेश देकर ही सन्तुष्ट था।

ऐतिहासिक परम्पराओं को नष्ट करना कठिन होता है, और जब तक वैदिक समाजशास्त्र के चार जातिबोधक शब्द रहेंगे तब तक सामाजिक शोषण और उत्पीड़न की दुःखद ऐतिहासिक स्मृतियाँ भी कायम रहेंगी। मेरा विश्वास है कि भारत के लिए गम्भीर सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है। मेरा यह विश्वास तब और दृढ़ हो जाता है जब मैं देखता हूँ कि गांधी जैसे शक्तिशाली व्यक्ति भी जन्म को जाति का आधार मानते थे। इसलिए दयानन्द गांधीजी से बड़े सामाजिक क्रान्तिकारी थे, क्योंकि उनका विचार था कि गुण तथा प्रकृति वर्ण का निर्धारण करते हैं। मैं मानता हूँ कि आदर्श रूप में चार वर्ण इस मनोवैज्ञानिक मान्यता पर आधारित थे कि मनुष्यों की योग्यताओं में अन्तर होता है, उनका उद्देश्य प्रतियोगिता का उन्मूलन करना तथा श्रम के विशेषीकरण के द्वारा समाज की सेवा करना था, किन्तु व्यवहार में जो पदावली चली आ रही है उसके मूल में अवश्य ही दुःखद ऐतिहासिक स्मृतियाँ छिपी हुई हैं, अतः उसको पूर्णतः बदल दिया जाना चाहिए। जाति-व्यवस्था पुरातनवादी चिन्तन का सबसे बड़ा गढ़ सिद्ध हुई है। शंकर जैसे अद्वैतवादियों ने भी, जिन्होंने धर्मशास्त्रियों के सगुण ब्रह्म को भी माया कह दिया था, जाति-व्यवस्था का समर्थन किया। विवेकानन्द शंकर से कहीं अधिक उग्र थे। फिर भी स्पष्ट है कि विवेकानन्द सामाजिक सहयोग तथा पारस्परिकता के समर्थक थे, जबकि मार्क्स ने सामाजिक शत्रुता, तनाव, संघर्ष और अन्तर्विरोधों और यहाँ तक कि युद्ध की भी शिक्षा दी।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आधुनिक भारत में भी हिंसात्मक सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता नहीं है, और न देश विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित धीमे विकास की धारणा से ही सन्तुष्ट हो सकता है। समय की माँग है कि लोकतांत्रिक साधनों के द्वारा आवश्यक सामाजिक सुधार सम्पादित किये जाएँ।

२. विवेकानन्द समाजशास्त्री के रूप में

विवेकानन्द सामाजिक यथार्थवादी थे। उनके व्यक्तित्व का प्रमुख पक्ष यह था कि उन्होंने अपनी शक्ति, ज्ञान, चिन्तन और आध्यात्मिक अनुभूति परिपक्व दार्शनिक अन्वेषण में लगा दी। वे निश्चय ही यह चाहते थे कि भौतिकवादी परिचय योग तथा वेदान्त की आध्यात्मिक शिक्षाओं को हृदयंगम करे। उनकी यह भी कामना थी कि पश्चिम के लोग अन्तर्दर्शी तथा आत्मगत मनोविज्ञान का अभ्यास करें। किन्तु अपने देशवासियों को उन्होंने यथार्थवाद तथा व्यवहारवाद का सन्देश दिया। उन्होंने भारत तथा पश्चिम के पर्यटन के दौरान अनुभव किया कि जो देश एक हजार वर्ष से भी अधिक समय से पराजय, विपन्नता, अपरिमेयचिन्ता दुःख, निराशा और राजनीतिक विपदाओं का शिकार रहा है उसे अपनी कमर सीधी करने के लिए शक्ति और निर्भीकता की आवश्यकता है। वे भारत के करोड़ों लोगों के दुःखों के सम्बन्ध में अत्यधिक जागरूक थे। एक संन्यासी के मुख से निःसृत ये शब्द सचमुच क्रान्तिकारी हैं, "भुखमरी से पीड़ित मनुष्य को धर्म का उपदेश देना कोरा उपहास है।" एक वेदान्ती की लेखनी से निकला हुआ यह कथन भी क्रान्तिकारी है कि भारत वह देश है जहाँ दसियों लाख लोग महुआ का फूल खाकर रहते हैं, और दस या बीस लाख साधु तथा एक करोड़ के लगभग ब्राह्मण इन लोगों का रक्त चूसते हैं।" अतः स्पष्ट है कि हिन्दुओं के आध्यात्मिक तत्वशास्त्र की श्रेष्ठता का शक्तिशाली समर्थक जनता के उद्धार के विषय में किसी प्रकार से झुकने के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि "राष्ट्र झोपड़ियों में रहता है।" सामाजिक क्रान्तिकारी के नाते विवेकानन्द ने जाति-व्यवस्था की बुराइयों की अनियन्त्रित शब्दों में भर्त्सना की और उन ब्राह्मणों पुरोहितों को निम्न जातियों के उत्पीड़न के लिए उत्तरदायी ठहराया जिन्होंने जाति-भेद का मायाजाल निर्मित किया था।

विवेकानन्द का गम्भीर सामाजिक यथार्थवाद उनके इस कथन से भी प्रकट होता है कि भारत

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

की एक हजार वर्ष पुरानी दासता की जड़ जनता का दमन है। देश के सामाजिक अत्याचारियों ने और अभिजातीय निरंकुश वर्गों ने बहुसंख्यक जनता का शोषण किया था। उन्होंने जनता को घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा और उसे इतना अपमानित किया कि वह अपना मनुष्यत्व ही खो बैठी। जब देश की प्राण-शक्ति का इतना अधःपतन हो गया तो उसमें विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करने की सामर्थ्य नहीं हो सकती थी। जनता ही देश का मेरुदण्ड होती है, क्योंकि वही सम्पूर्ण धन और भोजन उत्पन्न करती है। जब उसे अस्वीकार और अपमानित किया जाता है तो वह राष्ट्रीय शक्ति के विकास में योग कैसे दे सकती है। स्वामीजी का कहना था कि देश के जीर्णोद्धार के लिए आवश्यक है कि जनता के उत्थान के लिए भावात्मक तथा रचनात्मक उपाय किये जाएँ। देश के करोड़ों लोगों की पुजारियों की पोपलीला, दरिद्रता, अत्याचार तथा अज्ञान से रक्षा करनी है। विवेकानन्द जानते थे कि यह समस्या बड़ी विकट थी और उसके समाधान से लिए आवश्यक था कि शिक्षित भारतीय बलिदान करें। अतः उन्होंने घोषणा की, "मैं उस हर व्यक्ति को देशद्रोही ठहराता हूँ जो उनके खर्च पर शिक्षा प्राप्त करके उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।"

स्वामीजी ने भारतीय समाज के उच्च वर्गों की कुटिलता, अहंकार और धूर्तता की निर्मम अमर्षपूर्ण भर्त्सना की। भारतीय इतिहास के सभी युगों में ये उच्च वर्ग देश के करोड़ों निवासियों का शोषण करते आये हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करने लगे और विदेशी राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की नींव मजबूत करने लगे, क्योंकि वह व्यवस्था उन्हें अपने कम भाग्यशाली बन्धुओं का उत्पीड़न करने की छूट देती थी। विवेकानन्द ने उन तथाकथित उच्च वर्गों, उन आंग्ल-भारतीय विद्रूप नकलचियों के विरुद्ध , जो अपने स्वामियों की जीवन प्रणाली का अनुकरण करते तथा देश की दरिद्र तथा असहाय जनता पर सब प्रकार के अत्याचार करते, अपनी दबी हुई घृणा, कटुता और क्रोध को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया।

"भारत के उच्च वर्गों, क्या तुम अपने को जीवित समझते हो? तुम तो केवल दस हजार वर्ष पुरानी ममियाँ हो। भारत में यदि किसी में तनिक सी प्राणशक्ति शेष रह गयी है तो वह उन लोगों में है जिन्हें तुम्हारे पूर्वज चलती-फिरती लाश समझकर घृणा करते थे। चलती-फिरती लाश तो वास्तव

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

में तुम हो, भारत के उच्च वर्गों! माया के इस जगत में असली माया तुम हो, तुम्हीं गूढ़ पहेली और मरुस्थल की मृगमरीचिका हो। तुम भूतकाल के प्रतिनिधि हो, तुम अतीत के विभिन्न रूपों के अव्यवस्थित जमघट हो, लोगों को तुम वर्तमान में भी दृष्टिगोचर प्रतीत होते हो, यह तो मन्दाग्नि से उत्पन्न दुःस्वप्न है। तुम शून्य हो, तुम भविष्य की सारहीन नगण्य वस्तु हो। स्वप्न-लोक के निवासियो, तुम अब भी क्यों लड़खड़ाते हुए घूम रहे हो? तुम पुरातन भारत के शव के मांसहीन और रक्तहीन अस्थिपंजर हो, तुम शीघ्र ही राख बनकर हवा में विलीन क्यों नहीं हो जाते? तुम अपने को शून्य में विलीन कर दो और तिरोहित हो जाओ, और अपने स्थान पर नये भारत का उदय होने दो। उसे (नये भारत को, अनु.) उठने दो, हल की मूठ पकड़े हुए किसान की कुटिया में से, मछुओं, मोचियों और भंगियों की झोपड़ियों में से। उठने दो उसे परचूनी वाले की दूकान से और पकौड़ी बेचने वाले की भट्ठी से। उठने दो उसे कारखानों से, हाटों से और बाजारों से। उसे कुंजों , वनों, पहाड़ियों और पर्वतों से उठने दो। इन साधारण जनों ने हजारों वर्षों तक उत्पीड़न सहन किया है और बिना शिकायत किये और बड़बड़ाए सहन किया है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें आश्चर्यजनक सहनशक्ति उत्पन्न हो गयी है। वे अनन्त दुःखों को सहते आये हैं जिसने उन्हें अविचल शक्ति प्रदान कर दी है। मुट्ठी भर दोनों पर जीवित रहकर वे संसार को झकझोर सकते हैं। उन्हें रोटी का आधा टुकड़ा ही दे दीजिए, और फिर तुम देखोगे कि सारा विश्व भी उनकी शक्ति को सम्भालने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। उनमें रक्तबीज की अक्षय शक्ति विद्यमान है। इसके अतिरिक्त उनमें आश्चर्यजनक शक्ति है जो शुद्ध तथा नैतिक जीवन से उपलब्ध होती है, और जो संसार में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। ऐसा शान्तिपूर्णता, ऐसा सन्तोष, ऐसा प्रेम, शान्तिपूर्वक तथा निरन्तर कार्य करते रहने की ऐसी शक्ति और काम के समय ऐसे सिंहतुल्य पौरुष का प्रदर्शन-यह सब तुम्हें कहाँ मिलेगा? अतीत के अस्थिपंजरों! यहाँ तुम्हारे समक्ष तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं जो भविष्य का भारत है। अपनी तिजोरियों को और अपनी उन रत्नजटित मुँदरियों को उनके बीच, जितनी शीघ्र हो सके, फेंक दो, और तुम हवा में विलीन हो जाओ जिससे तुम्हें भविष्य में कोई देख न सके-तुम केवल अपने कान खुले रखो। जिस क्षण तुम तिरोहित हो जाओगे उसी क्षण तुम नवजाग्रत भारत का उद्घाटन-घोष सुनोगे।''

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि विवेकानन्द निष्ठा और उत्साह के साथ विश्वास करते थे कि पुनर्जाग्रत भारत के भविष्य का निर्माण 'सामान्य जनता' की ठोस नींव पर ही होगा और पुराने अभिजातवर्गीय तथा सामन्त जाति-नेताओं की कब्रों पर गौरवपूर्ण ऐतिहासिक विरासत का उदय और विकास होगा।

विवेकानन्द भारत के पहले विचारक थे जिन्होंने भारतीय इतिहास की समाजशास्त्रीय दृष्टि से यथार्थवादी व्याख्या की। उन्होंने राजनीतिक उथल-पुथल के प्रलयकारी विप्लवों के मूल में सामाजिक संघर्षों का निरन्तर सूत्र ढूँढ़ निकाला। उन्होंने भारतीय की जो व्याख्या की वह स्वरूप में अंशतः मार्क्सवादी भी है, किन्तु वह उनके अपने ढंग की मार्क्सवादी है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि उन्होंने 'दि कैपिटल' (पूँजी) अथवा 'दि कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो' (साम्यवादी घोषणा) पढी थी। उनके अनुसार प्राचीन भारत मे राजशक्ति तथा ब्रह्मशक्ति के बीच संघर्ष चला करता था। बौद्ध धर्म क्षत्रियों का विद्रोह था। उसके कारण पुरोहितों की शक्ति का ह्रास व राजशक्ति का उत्कर्ष हुआ। आगे चलकर कुमारिल, शंकर और रामानुज ने पुरोहित शक्ति के उत्कर्ष का प्रयत्न किया। उदरम्भरि ब्राह्मण पुरोहितों ने मध्ययुगीन राजपूती सामन्तवाद से मेल करके अपनी शक्ति को कायम रखने की भी चेष्टा की, किन्तु मुस्लिम शक्ति की प्रगति के कारण पुरोहित वर्ग के उत्कर्ष की सम्पूर्ण आशाएँ ध्वस्त हो गयी, और न पुरोहित लोग विदेशी ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही अपनी शक्ति के पुनरुत्थान का स्वप्न देख सकते थे। भारतीय इतिहास की यह समाजशास्त्रीय व्याख्या अंशतः मार्क्सवादी है और अंशतः विल्फैडो परेटो के सिद्धान्त से मिलते-जुलती है। यह मार्क्सवादी इस अर्थ में है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय निरन्तर जनता के शोषण में लगे रहे। दलित वर्गों के शोषण की धारणा मार्क्सवादी है। किन्तु विवेकानन्द का सिद्धान्त परेटो की धारणा से इस अर्थ में मिलता जुलता है कि उन्होंने शोषक वर्गों के बीच संघर्ष की धारणा का प्रतिपादन किया जिसे परेटो की भाषा में विशिष्ट वर्ग का चक्रावर्तन कहते हैं। इसी प्रकार विवेकानन्द के अनुसार भारतीय इतिहास में दो सामाजिक प्रवृत्तियाँ रही हैं। पहली ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच निरन्तर संघर्ष की प्रवृत्ति है। कभी-कभी ऐसे भी अवसर आये जब दोनों वर्गों ने परस्पर सहयोग किया। दूसरे, पुरोहितों ने अपनी धार्मिक क्रियाओं के द्वारा और क्षत्रियों तथा बाद में राजपूतों ने तलवार के बल पर जनता का निरन्तर शोषण किया।

एक बार स्वामीजी ने घोषणा की थी, "मैं इसलिए समाजवादी नहीं हूँ कि वह पूर्ण व्यवस्था

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
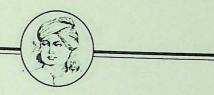
है, बल्कि इसलिए कि आधी रोटी न कुछ से अच्छी है।'' विवेकानन्द को दो अर्थों में समाजवादी कहा जा सकता है। प्रथम, इसलिए कि उनमें यह समझने की ऐतिहासिक दृष्टि थी कि भारतीय इतिहास में दो उच्च जातियों-ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का आधिपत्य रहा है। क्षत्रियों ने गरीब जनता का आर्थिक तथा राजनीतिक शोषण किया और ब्राह्मणों ने उसे नवीन तथा जटिल धार्मिक क्रियाकलाप और अनुष्ठानों के बन्धन में जकड़ कर रखा। उन्होंने खुले तौर पर जातिगत उत्पीड़न की भर्त्सना की और आत्मा तथा ब्रह्म में आस्था रखने के नाते मनुष्य तथा मनुष्य के बीच सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार किया। उनके आध्यात्मिक जन्मसिद्ध अधिकार अर्थात् शाश्वत प्रकाश, ज्ञान तथा अमरत्व को साक्षात्कृत करने के लिए अपने-अपने ढंग से आगे बढ़ रही है, यद्यपि उनका ढंग कितना ही अपूर्ण क्यों न हों। वास्तविक आध्यात्मिक आत्माओं के बीच किसी प्रकार की श्रेष्ठता अथवा ऊँच-नीच की दीवार खड़ी करना पाप है। विवेकानन्द की रचनाओं में सामाजिक समानता का जो समर्थन देखने को मिलता है वह प्रबल पुरातनवाद तथा ब्राह्मणों की स्मृतियों में व्याप्त सामाजिक ऊँच-नीच के सिद्धान्त का सबल प्रतिवाद है, उसका सामाजिक समानता का सिद्धान्त तत्वतः समाजवादी है।

दूसरे विवेकानन्द समाजवादी इसलिए थे कि उन्होंने देश के सब निवासियों के लिए 'समान अवसर' के सिद्धान्त का समर्थन किया। उन्होंने लिखा, ''यदि प्रकृति में असमानता है, तो भी सबके लिए समान अवसर होना चाहिए-अथवा यदि कुछ को अधिक और कुछ को कम अवसर दिया जाय तो दुर्बलों को अधिक अवसर दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में ब्राह्मण को शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी चाण्डाल को। यदि ब्राह्मण को एक अध्यापक की आवश्यकता है तो चाण्डाल को को दस की है, क्योंकि जिसको प्रकृति ने जन्म से सूक्ष्म बुद्धि नहीं दी है उसे अधिक सहायता दी जानी चाहिए। वह मनुष्य पागल है जो बरेली को बाँस ले जाता है। पददलित, दरिद्र और अज्ञानी इन्हीं को अपना देवता समझो।'' समान अवसर का सिद्धान्त निश्चय ही समाजवादी दिशा का द्योतक है। विवेकानन्द इस सिद्धान्त का समर्थन करके समाज के निम्न वर्गों का उत्थान करना चाहते हैं। यह हमें लोकतांत्रिक समाजवाद के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रतिपादन अवसर की समानता की धारणाओं का स्मरण दिलाता है।

किन्तु स्वामी विवेकानन्द पश्चिम के समाजवाद तथा अराजकतावाद के आदर्शों की दुर्बलता को समझते थे। वे समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसात्मक सामाजिक क्रान्ति का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अवयवी विकास में विश्वास था। किन्तु यह निश्चित है कि वे महान् सामाजिक यथार्थवादी थे, वे भारतीय समाज में प्रचलित जातिगत उत्पीड़न से भली-भाँति परिचित थे, और वे भोजन तथा भुखमरी की समस्या का समाधान करने की तात्कालिक आवश्यकता को समझते थे। इसलिए वे चाहते थे कि समाजवाद को भी एक बार परख लिया जाय, "यदि और किसी लिए नहीं तो उसकी नवीनता के लिए ही सही," और इसलिए भी कि सुख और दुःख का पुनर्वितरण इससे सदैव अधिक अच्छा है कि सुख पर समाज के कुछ वर्गों का एकाधिकार हो।

मार्क्स की व्यवस्था में औद्योगिकी तथा अर्थतन्त्र जो कि सामाजिक व्यवस्था का निचला ढाँचा है, राजनीति के ऊपरी ढाँचे की तुलना में आर्थिक महत्वपूर्ण है। एक अर्थ में उन्हें राजनीतिक परिस्थितियों का निर्णायक माना जाता है। मार्क्स पूँजी के महत्व को भली-भांति समझता था। किन्तु विवेकानन्द संन्यासी थे और उनका लक्ष्य काम और कंचन पर विजय प्राप्त करना था, इसलिए उन्होंने धन के सामाजिक तथा आर्थिक मूल्य को तथा ऐतिहासिक क्रियाकलाप के आर्थिक कारणों को उतना महत्व नहीं दिया जितना कि आर्थिक नियतिवादी तथा ऐतिहासिक भौतिकवादी देते हैं। किन्तु पश्चिम से लौटने के बाद वे सामाजिक संगठन के महत्व को समझने लगे और कहा करते थे कि यदि मैं तीस करोड़ रुपया एकत्र कर सकूँ तो भारतीय जनता का उद्धार किया जा सकता है। भौतिकवादी पश्चिम के अनुभवों ने इस निर्विकल्प समाधि के साधक के समक्ष भी भुखमरी तथा दरिद्रता को जीतने की माँग के महत्व को स्पष्ट कर दिया। एक बार उन्होंने लिखा था, "दरिद्रता के लिए कार्य उत्पन्न करने हेतु भौतिक सभ्यता अपितु विलासिता भी आवश्यक है। रोटी! रोटी! मुझे उस ईश्वर में विश्वास नहीं जो मुझे यहाँ रोटी नहीं दे सकता और स्वर्ग में शाश्वत आनन्द देता है। उँह! भारत को उठाना है, मुझे गरीबों को भोजन देना है, शिक्षा का प्रसार करना है और पोपलीला का अन्त करना है। पोपलीला का नाश हो, सामाजिक अत्याचार का नाश हो। अधिक रोटी, प्रत्येक के लिए अधिक अवसर।" मार्क्स ने आने वाली सामाजिक क्रान्ति की सफलता के लिए सर्वहारा के संगठित दल की आवश्यकता पर बल दिया। इसके विपरीत विवेकानन्द भारत के सामाजिक उद्धार के लिए ध्येयनिष्ठ, त्यागी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना चाहते थे। उनकी मानववादी आचारनीति तथा काम के ढंग की व्यावहारिक अभिरुचि इस बात से प्रकट होती है कि उन्होंने संन्यास आश्रम के एकान्तप्रिय, आत्मरति, आत्मतृप्त, व्यक्तिवादी तथा ध्यानोन्मुखी सदस्यों को एक परोपकारी संस्था के रूप में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

संगठित करके क्रियाशील बना दिया। विवेकानन्द ने समाज के सुधार पर बल दिया, किन्तु उनका इस बात पर और भी अधिक बल था कि मनुष्य की आत्मा वसुधातल का आरोहण कर स्वर्णिम देवत्व को प्राप्त कर ले। मार्क्स एक महान् यथार्थवादी तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी था, इसलिए उसने हिंसात्मक सामाजिक क्रांति तक का समर्थन किया। किन्तु मार्क्स के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है। उनका स्वरूप एक ऐसे दर्शन का है जिसमें घृणा, तिरस्कार और ईर्ष्या का प्राधान्य देखने को मिलता है। मार्क्सवाद उस अर्थ में गम्भीर तथा तात्विक दर्शन नहीं है जिसमें प्लेटोवाद, वेदान्त, बौद्ध दर्शन अथवा हेगेलवाद है। उसका जन्म औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न विक्षोभ तथा असामंजस्य से संकुल परिस्थितियों में हुआ था। वह पूँजीवाद के अन्तर्विरोध को हिंसात्मक कार्यप्रणाली के द्वार नष्ट कर देना चाहता है, किन्तु वह मनुष्य की गम्भीर मनोवृत्तिमूलक और सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयत्न नहीं करता। इसके विपरीत विवेकानन्द के समाजशास्त्र का मूल आध्यात्मिकता है। उसमें चरित्र की शुद्धता तथा भ्रातृत्व पर अधिक बल दिया गया है। इस प्रकार वह न्याय, प्रेम तथा सार्वभौम करुणा के शाश्वत सन्देश का ही पुनःप्रतिपादन है।

पिछले दो विश्व-युद्धों के फलस्वरूप मनुष्यों की समझ में यह आता जा रहा है कि भौतिकवादी समाजशास्त्र, प्राकृतिक आचारनीति तथा संशयवादी तत्वशास्त्र निरर्थक है। विवेकानन्द के सामाजिक निष्कर्ष ने अगणित सन्तों और ऋषियों के शाश्वत आध्यात्मिक स्वतन्त्रता पर बल दिया। मेरा विश्वास है कि इस समय समन्वय प्रतिपादक व्यापक सामाजिक और राजनीति दर्शन की आवश्यकता है। भौतिक जगत् की उपेक्षा नहीं की जा सकती। पूँजीवादी शोषण का अन्त होना चाहिए और आर्थिक समानता को समाज का आदर्श बनाया जाना चाहिए। किन्तु आर्थिक सुरक्षा की प्राप्ति के उपरान्त विश्व की संस्कृति और उसकी आत्मा के अधिक पूर्ण विकास के लिए तथा मानव-सम्बन्धों को अधिक समुचित रूप से नैतिक नींव पर स्थापित करने के लिए हमें वेदान्त की उन शिक्षाओं से प्रेरणा लेनी पड़ेगी जिनके आधुनिक प्रतिपादक स्वामी विवेकानन्द थे।

- "आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन" से साभार उद्धृत

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी विवेकानन्द

❒ रामधारी सिंह दिनकर

यह रेडियो-रूपक सुप्रसिद्ध साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर की कृति "हे राम" से संकलित किया गया है। रेडियो-रूपक में ध्वनि के ही जरिये कथा कही जाती है, चरित्र-चित्रण किया जाता है और प्रसंग का कवित्व उभारा जाता है। रेडियो-रूपक पढ़ते समय पाठक यदि यह कल्पना करें कि वे रूपक पढ़ नहीं रहे हैं, बल्कि वह बोला जा रहा है, तो उसका आनंद कुछ बढ़ जायेगा। यह रेडियो-रूपक विवेकानन्द के समग्र व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है।

- संपादक

(गंभीर-संगीत)

वाचक : यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वाचक : अवतार अचानक ही आकाश से नहीं टपक पड़ते। उनका आविर्भाव काल की आवश्यकताओं के अनुसार होता है। जब समाज बर्बर और हिंसापूर्ण था, अवतार भगवान् परशुराम का हुआ, क्योंकि जिस समाज के लोग अहिंसा की महिमा नहीं समझते, कुठार की वाणी उनकी समझ में आ जाती है।

वाचिका : और सभ्यता जब परिपाक पर पहुंची, लोगों को इस बात में भी शंका दिखायी देने लगी कि यज्ञ में पशुओं की बलि देना पुण्य है या नहीं।

वाचक : बुद्धदेव ने यज्ञ में पशुओं की बलि देने वाली प्रथा को पाप समझा और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उन्होंने मनसा,वाचा, कर्मणा हिंसा की मनाही कर दी। सभी कर्मठ मनुष्यों के समान अवतार भी अपने जीवन में अनेक प्रकार के कार्य करते हैं, किंतु उनका खास जोर दो-एक मूल सिद्धांतों पर होता है। भगवान् रामचन्द्र का सारा बल इस सिद्धांत पर था कि सभी अवस्थाओं में कर्तव्य प्रमुख और भावना गौण है।

वाचिका : और जब भगवान् की उपेक्षा से समाज को असंतुलन का भान हुआ, तब आविर्भाव भगवान् श्रीकृष्ण का हुआ, जिनकी शिक्षा यह थी कि भावना और कर्तव्य के बीच इस द्वंद्व का समाधान अनासक्ति में खोजो। किंतु उन्नीसवीं सदी में आविर्भूत होने वाले अवतारों का जोर किस बात पर था?

वाचक : उन्नीसवीं शताब्दी बौद्धिक कोलाहल का काल था। अंग्रेजी भाषा के साथ यूरोपीय बुद्धिवाद के प्रचार से भारतवासियों के परंपरागत विचारों को बड़े जोर का धक्का लगा और उनमें से कितने ही लोग गंभीर होकर यह सोचने लगे कि मूर्तिपूजा ठीक है या नहीं, व्रतों और अनुष्ठानों से वास्तविक धर्म का क्या संबंध है तथा पुराणों में जो विचित्र कथाएं मिलती हैं, उनकी सार्थकता क्या है।

वाचिका : इसीलिए हम देखते हैं कि उन्नीसवीं सदी में निराकारवादी आंदोलनों का बांहुल्य है। ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज ये सभी आंदोलन हिंदुत्व के उसी रूप को मानते हैं, जो निराकारवादी है, जो मूर्तिपूजा के खिलाफ हैं, जो जात-पांत को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

वाचक : झगड़ा उस समय केवल निराकार और साकार का ही नहीं था, बल्कि ईसाई धर्मोपदेशक हिंदूधर्म और इस्लाम से झगड़ रहे थे और इस्लाम तथा हिन्दुत्व के बीच भी मेल कम, खटपट कुछ ज्यादा हो गयी थी। विज्ञान और बुद्धिवाद

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

के प्रचार से खलबली हर एक के भीतर मच गयी थी और प्रत्येक धर्म अन्य धर्म को लेकर झगड़े, धर्म को लेकर भाषण और विवाद तथा धर्म को लेकर शास्त्रार्थ-ये उन्नीसवीं सदी के बौद्धिक कोलाहल के प्रधान लक्षण थे।

वाचिका : किंतु परमहंस रामकृष्ण तो पंडित नहीं थे। क्या वे भी शास्त्रार्थ करने को प्रस्तुत रहते थे?

वाचक : नहीं; उस तमाम कोलाहल में केवल परमहंस रामकृष्ण ही थे, तो अविचल और शांत थे। उन्होंने भाषण नहीं दिये, अपने मतों के प्रचार के लिए अखबार नहीं निकाला, न कभी किसी के साथ वे शास्त्रार्थ में फंसे। कलकत्ते के पास दक्षिणेश्वर के मंदिर में बैठे-बैठे वे शांत भाव से साधना करते रहे। जनता ने पंडितों के तर्कों को सुनकर उन पर श्रद्धा अवश्य दिखाई, किंतु धर्म कैसा होता है, इसका ज्ञान जनता को परमहंस रामकृष्ण के जीवन को देखकर हुआ। और लोग धर्म के बातें करते, परमहंस रामकृष्ण धर्म के जीते-जागते स्वरूप थे।

वाचिका : तो फिर परमहंस रामकृष्ण के विचारों का हम विश्वव्यापी प्रचार कैसे देखते हैं? उस एकांत साधक की अनुभूतियां दिग्-दिगंत में कैसे फैल गयीं?

वाचक : प्रत्येक कृष्ण के साथ किसी अर्जुन का आगमन होता है। प्रत्येक बुद्ध अपने साथ किसी आनंद को लिये आते हैं और जब भी राम का आगमन होता है, तब हर बार उनके साथ कोई लक्ष्मण भी पधारते हैं। परमहंस रामकृष्ण को पुरानी दुनिया से जो कुछ कहना था, उन्होंने स्वयं कहा। किन्तु नयी दुनिया में अपना संदेश फैलाने को वे विवेकानन्द की आत्मा में प्रविष्ट हो गये। विवेकानन्द रामकृष्ण के लक्ष्मण थे, अर्जुन थे, आनंद थे, रामकृष्ण जिये इसलिए कि उन्हें विवेकानन्द को तैयार करना था और विवेकानन्द का अवतार ही इसलिए हुआ था कि वे परहंसदेव के संदेशों का विश्वव्यापी प्रचार करें।

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
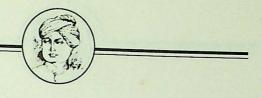
वाचिका : क्या विवेकानन्द आरंभ से ही आस्तिक प्रवृत्ति के थे?

वाचक : नहीं, आस्तिक तो क्या, अपने छात्र-जीवन में वे नास्तिक थे, संदेहवादी थे और बुद्धि की कसौटी पर परखे बिना किसी भी बात को स्वीकार नहीं करते थे। किंतु भगवान् को जिससे जैसा काम लेना होता है, वे उसे वैसे ही परिवेश में डाल देते हैं।

वाचिका : सुना है, विवेकानन्द के पिता वकील के खानदान में जन्मे थे।

वाचक : हां, विवेकानन्द के पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था और वे वकील थे। विवेकानन्द के पर-पितामह भी वकील थे और उनके पितामह दुर्गाचरण दत्त ने भी वकालत शुरू की थी। किंतु भरी जवानी में ही उन्होंने संन्यास ले लिया और फिर लौटकर वे घर नहीं आये। विवेकानन्द की माता भुवनेश्वरी देवी धर्मप्राण महिला थीं। जब बहुत दिनों तक उन्हें कोई संतान नहीं हुई, उन्होंने काशी में वीरेश्वर विश्वनाथ के यहां पुरश्चरण करवाया और इसी पुरश्चरण के फलस्वरूप विवेकानन्द का जन्म हुआ। इसीलिए विवेकानन्द का आदि नाम वीरेश्वर रखा गया था, यद्यपि बाद में चलकर घर के लोग उन्हें नरेन्द्रनाथ कहने लगे।

वाचिका : क्या नरेन्द्रनाथ अपने बचपन मे भी तेजवान् थे?

वाचक : बड़े उपद्रवी थे। उनके उपद्रवों से घबराकर उनकी माता कहा करती थीं, 'हाय, मैंने शंकर से एक संतान मांगी थी, किंतु महादेव ने स्वयं न आकर मेरी कोख में एक भूत को भेज दिया।' बालक नरेन्द्र क्रोधी थे। वे कभी-कभी आवेश में आकर बेहतर चीखने-चिल्लाने और कांपने लगते थे। उस समय माता उन पर एक लोटा पानी डालकर शिव का उच्चारण करतीं और यह नाम सुनते ही बालक नरेन्द्र शांत हो जाते थे।

वाचिका : सुना है नरेन्द्रनाथ बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे?

वाचक : धार्मिक प्रवृत्ति के भी थे और बुद्धिमान् भी। साधुओं और संन्यासियों के प्रति उन्हें बचपन से ही श्रद्धा थी और बचपन से ही वे खेल-खेल में पूजा-पाठ और ध्यान भी किया करते थे। किंतु खुद जांचे बिना किसी भी बात को कबूल नहीं करना भी उनके स्वभाव में था। विश्वनाथ दत्त के एक मुनीम मुसलमान थे। उनका हुक्का अलग रखा रहता था। नरेन्द्रनाथ ने सुन रखा था कि हिंदू को मुसलमान का हुक्का नहीं पीना चाहिए। अतएव उन्होंने एक दिन हुक्का चुराकर उस हुक्के में मुंह लगा दिया। इतने में पिता ने उन्हें देख लिया और वे बोले :

विश्वनाथ दत्त : क्यों यह क्या कर रहा है नरेन्द्र?

वाचक : नरेन्द्रनाथ सकपकाये नहीं। उन्होंने कहा :

नरेन्द्रनाथ : मैं इस बात की परीक्षा कर रहा था कि अगर जाति-भेद न मानूं तो मेरा क्या होगा?

वाचक : नरेन्द्रनाथ के घर के पास एक पड़ोसी का चंपक का पेड़ था। नरेन्द्र उसकी फुनगी पर चढ़कर झूला झूलते थे। एक दिन पेड़ के मालिक को चिंता हुई, बच्चा किसी दिन पेड़ से गिर न जाय। अतएव मीठी बोली में उस बूढ़े ने नरेन्द्रनाथ से कहा :

बूढ़ा : बेटा, उस पेड़ पर न चढ़ा करो।

नरेन्द्र : क्यों, इस पेड़ पर चढ़ने से क्या होता है?

बूढ़ा : उस पेड़ पर ब्रह्मराक्षस रहता है। उसके दांत बड़े-बड़े हैं। वह अपना पेड़ का

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अपमान करने वाले की गरदन मरोड़ डालता है।

वाचक : नरेन्द्रनाथ ने नीचे उतरकर बूढ़े की बात का काफी सम्मान किया। बूढ़े ने समझा, चलो काम बन गया। मगर उसके जाते ही नरेन्द्र उस पेड़ पर फिर से चढ़ गये और फिर झूला झूलने लगे। वे मन-ही-मन सोचने लगे :

नरेन्द्र : ब्रह्मराक्षस महोदय को एक बार देखूं तो कि वे कैसे हैं!

वाचक : लेकिन नरेन्द्रनाथ का साथी काफी भयभीत हो गया था। उसने कांपते कंठ से कहा :

साथी : नहीं भाई नरेन, ब्रह्मराक्षस की बात कौन जाने? न मालूम, कब किधर से आकर गरदन मरोड़ दे।

वाचिका : किंतु नरेन्द्र कब डरने वाले थे? उन्होंने कहा :

नरेन्द्र : तू निपट मूर्ख है। तेरे दादा डराने के लिए झूठ-मूठ बात बना गये। अगर सचमुच इस पेड़ पर ब्रह्माराक्षस रहता तो उसने मेरी गर्दन कब की मरोड़ दी होती।

वाचिक : सचमुच ही बड़े अद्‌भुत बालक थे नरेन्द्रनाथ। किंतु रामकृष्णदेव के संपर्क में कैसे आये?

वाचक : कालेज में पढ़ते समय उनके भीतर यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि परम सत्य तक पहुँचने का कौन-सा मार्ग है। उन्होंने यूरोप के समस्त दर्शन को छान डाला, तेजस्वी विद्वानों की संगति की, ब्रह्मसमाज के वे सदस्य बने, किंतु शांति उन्हें नहीं प्राप्त हुई। धार्मिक प्रेरणा से वे इतने बेचैन हो उठे कि उन्होंने अपने पिता से कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूंगा। उनका यह निर्णय जान

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

लेने पर श्री रामचंद्र दत्त ने पहली बार परमहंस रामकृष्ण का नाम उनके कान में डाला और कहा :

रामचन्द्र दत्त : यदि तेरे मन में सचमुच धर्म-प्राप्ति की इच्छा है, तो व्यर्थ ही अनेक स्थानों में भटकने से कोई लाभ नहीं होगा। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास चला जा।

वाचिक : फिर वे दक्षिणेश्वर चले गये?

वाचक : नहीं। यही प्रेरणा उन्हें एक और व्यक्ति से प्राप्त होने वाली थी। वह व्यक्ति उनके कालेज के प्रिंसिपल मिस्टर हेस्टी थे। मिस्टर हेस्टी अपने छात्रों को यह बता रहे थे कि प्रकृति-सौन्दर्य को देखते-देखते कैसे कवि वर्डस् वर्थ को समाधि लग जाती थी। किंतु यह समाधि की बात छात्रों के पल्ले नहीं पड़ रही थी। अतएव हेस्टी साहब ने उन्हें समझाकर कहा :

मिस्टर हेस्टी : चित्त की पवित्रता और किसी विषय में मन की एकाग्रता हो जाने से यह अवस्था प्राप्त हो जाती है। किंतु ऐसे पुरुष बहुत विरले दिखायी देते हैं। मेरे देखने में तो दक्षिणेश्वर के श्रीरामकृष्ण परमहंस ही एक अकेले ऐसे पुरुष हैं। वहां जाकर उनकी यह अवस्था देखने से तुम लोगों को इस विषय की बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

वाचक : किंतु श्री रामकृष्ण से नरेन्द्रनाथ का पहला साक्षात्कार अकल्पित रीति से हुआ। बात यह हुई कि श्री रामकृष्ण के एक भक्त श्री सुरेशचंद्र मित्र नरेन्द्रनाथ के पड़ोस में रहते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि श्री रामकृष्ण श्री सुरेशचंद्र के घर पर पधारे और श्री सुरेशचंद्र ने, और किसी गवैये को न पाकर, पड़ोसी के विश्वनाथ दत्त के बेटे यानी नरेन्द्रनाथ को इसलिए बुलवा लिया कि वह परमहंस देव को कोई गाना सुना दे।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
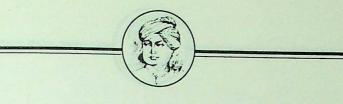
वाचिका : स्वामी विवेकानन्द गाते भी थे?

वाचक : स्वामी विवेकानन्द अनेक गुणों के आगार थे। अत्यंत मेधावी छात्र होने के साथ-साथ वे पहलवान भी थे, कुश्ती भी लड़ते थे, गायन भी गाते थे और तबला भी बहुत अच्छा बजाते थे। उस दिन परमहंस देव को उन्होंने जो गीत सुनाया, वह ब्रह्म समाज का गीत था जिसकी टेक है, 'मन चलो निज निकेतने।'

नरेन्द्र : (गाकर)

मन चलो निज निकेतने।
संसार विदेशे, विदेशीर वेशे, भ्रमो केनो अकारणे?
विषय-पंचक आर भूतगण,
सब तोर पर, केउ नय आपन।
पर प्रेमे केनो होये अचेतन
भुलिछो आपन जने?
मन चलो निज निकेतने।

वाचक : गीत सुनते-सुनते श्री रामकृष्ण को भाव-समाधि लग गयी। जब समाधि टूटी, उन्होंने कहा :

रामकृष्ण : कितना सुन्दर कंठ है! कितना भाव-विभोर होकर गाता है! बेटा, क्या एक दिन शीघ्र ही वहां दक्षिणेश्वर आ सकोगे?

नरेन्द्र : हां, महाराज! आऊंगा।

वाचक : उस पहली मुलाकात में और कोई बात नहीं हुई। नरेन्द्रनाथ के भीतर आध्यात्मिक जिज्ञासा आग के समान धधक उठी थी। वे ईश्वर का दर्शन पाना

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

चाहते थे। एक दिन इसी व्याकुलता में वे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के समक्ष जा खड़े हुए और उनसे पूछ बैठे :

नरेन्द्र : महाराज, आपने ईश्वर को देखा है?

वाचक : महर्षि भला क्या उत्तर देते? उनके मुख से केवल यह निकला :

महर्षि : बेटा, तुम्हारी आंखें योगियों की-सी लगती हैं।

वाचक : और श्री रामकृष्ण का दर्शन करने को नरेन्द्रनाथ जब दक्षिणेश्वर गये, तब श्री रामकृष्ण से भी उन्होंने यही प्रश्न किया था।

नरेन्द्र : महाराज, क्या आपने ईश्वर को देखा है?

वाचिका : श्री रामकृष्ण ने क्या कहा भला?

वाचक : उन्होंने कहा :

रामकृष्ण : हां, बेटा! मैंने ईश्वर को देखा है। तुम्हें जिस तरह प्रत्यक्ष देख रहा हूं, इससे भी कहीं अधिक स्पष्ट रूप से उन्हें देखा है। क्या तुम भी देखना चाहते हो? यदि मेरे कहे अनुसार काम करो तो तुम्हें भी दिखा सकता हूं।

वाचक : नरेन्द्रनाथ को लगा, मानो अंधेरे में भटकती हुई नाव को कहीं रोशनी मिल गयी। आखिर एक व्यक्ति तो मिला, जो ईश्वरदर्शी होने का दावा करता है। श्री रामकृष्ण ने उस दिन भी नरेन्द्रनाथ से किसी गाने की फरमाईश की और उस दिन नरेन्द्रनाथ ने उन्हें किसी मुस्लिम सूफी कवि का एक गीत सुनाया।

नरेन्द्र : (गाकर)

तुझसे हमने दिल को लगाया,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझीको अपना पाया,
जो कुछ है, सो तू ही है।
सब के मकां दिल का मकीन तू,
कौन-सा दिल है जिसमें नहीं तू?
हर एक दिल में तू ही समाया,
जो कुछ है,सो तू ही है।
मलाइक क्या? क्या इंसान?
क्या हिंदू, क्या मुसलमान?
जैसे चाहा, तूने बनाया,
जो कुछ है तू ही है।

वाचक : एक ऐसे युग में जब सभी धर्म आपस में लड़ रहे थे, श्री रामकृष्ण ने सभी धर्मों की मूलभूत एकता की अनुभूति प्राप्त की थी। बारी-बारी से उन्होंने वैष्णव और शाक्त,निराकार और साकार-सभी पंथों की साधना की थी और सबको सत्य पाया था। यही नहीं, बल्कि उन्होंने कुछ दिनों तक मुसलमान की तरह रहकर इस्लाम धर्म की भी साधना की थी और थोड़े दिनों तक ईसाई की तरह रहकर ईसाईयत के मार्ग से भी सिद्धि प्राप्त की थी। अतएव नरेन्द्र के मुख से उन्होंने जो गीत सुना, उसमें उन्हें अपनी ही साधना की झंकार सुनायी पड़ी। बस, क्या था! वे समझ गये कि नरेन्द्र ही वह पुरुष है, जो उनकी अनुभूतियों का संदेश अखिल विश्व को सुनायेगा। बाद को चलकर नरेन्द्र से अपनी इस भेंट का वर्णन करते हुए श्री रामकृष्ण अपने भक्तों से कहा करते थे :-

रामकृष्ण : जब नरेन्द्र आया, उसका ध्यान अपने शरीर की ओर बिलकुल नहीं था। किसी

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भी बाह्य वस्तु की ओर उसका लक्ष्य नहीं था। उसकी आंखों से ऐसा दिखायी दिया, मानो उसके मन को किसी ने जबर्दस्ती अंतर्मुखी बना दिया हो। यह सब देखकर मैंने यह सोचा कि विषयी लोगों के आगार इस कलकत्ता शहर में इतना बड़ा सतो-गुणी अधिकारी कहां से आ गया? उसके चले जाने के बाद उससे पुनः भेंट करने के लिए मेरा मन चौबीसों घंटे इतना व्याकुल रहता था कि मैं कह नहीं सकता।

वाचक : और बाद को इस भेंट का वर्णन करते हुए स्वामी विवेकानन्द भी कहा करते थे कि :

विवेकानंद : गायन के बाद उस दिन श्री रामकृष्ण मुझे एकांत में ले गये और कहने लगे, 'प्रभो! मुझे मालूम है कि तू पुरातन नारायण ऋषि है और जीवों की दुर्गति का निवारण करने के लिए पुनः शरीर धारण करके आया है।' यह सब देखकर मैं अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ और मन में कहने लगा, मैं यहां किसके दर्शन के लिए आया और किससे भेंट हो गयी? इनको तो उन्माद-वायु हुआ-सा दिखता है; नहीं तो मैं तो विश्वनाथ दत्त का लड़का हूं। तब मुझको ये इस प्रकार की बातें क्यों कहते हैं?

वाचक : सभी बुद्धिवादियों को रहस्यवादी संत उन्मादग्रस्त ही दिखायी देते हैं। किंतु एक दिन रामकृष्ण के स्पर्श मात्र से नरेन्द्र के मन की जो अवस्था हो गयी, उसकी याद करके विवेकानंद कहा कहते थे :

विवेकानंद : उन्होंने दाहिना पैर मेरे शरीर पर रखा। ऐसा करते जो चमत्कार हुआ सो क्या बताऊं! मुझे ऐसा दिखने लगा कि कमरा और उसकी सारी चीजें बड़े वेग से घूमकर कहीं अंतर्धान हो रही हैं और सारा विश्व तथा मेरा अहंकार एक सर्वग्राही महाशून्य में विलीन होने को बड़े वेग से दौड़ रहा है। इतने में मेरा

CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

धैर्य जाता रहा और मैं एकदम चिल्ला उठा, 'अजी, यह आप मुझे कर क्या रहे हैं! अभी मेरे माता-पिता जीवित हैं।'

वाचक : श्री रामकृष्ण ने हंसते हुए नरेन्द्र के वक्षस्थल का स्पर्श किया और वे बोले :

रामकृष्ण : अच्छा, तो फिर अभी रहने दे। एकदम ही होने की कोई जरूरत नहीं। धीरे-धीरे होगा।

वाचक : और धीरे-धीरे नरेन्द्रनाथ श्री रामकृष्ण की ओर आकृष्ट होने लगे। नरेन्द्र अत्यंत प्रचंड बुद्धिवादी थे। श्री रामकृष्ण जब-जब उनके भीतर योग और अध्यात्म की शक्तियों का संचार करते, नरेन्द्रनाथ का शंकालु मन यह सोचने लगता, कहीं यह वह क्रिया तो नहीं है, जिसे हिपनोटिज्म या मोहिनी विद्या कहते हैं! किंतु बार-बार उन्हें यह भी विश्वास होने लगा कि श्री रामकृष्ण कुछ भी क्यों न हों, वे अत्यंत त्यागी और पवित्र होने के कारण मान देने के योग्य हैं। और श्री रामकृष्ण नरेन्द्रनाथ के ज्यों-ज्यों समीप आते गये, त्यों-त्यों नरेन्द्र पर उनकी श्रद्धा बढ़ती गयी। जब नरेन्द्र कई दिनों तक उनसे भेंट करने को नहीं आते, तब श्री रामकृष्ण का हृदय अकुलाने लगता और वे भक्तों से नरेन्द्र की प्रच्छन्न महिमा का बखान करते हुए कहते :

रामकृष्ण : नरेन्द्र के समान अधिकारी पुरुष इस युग में पृथ्वी पर आज तक नहीं आया। शुकदेव के समान ही नरेन्द्र को माया स्पर्श नहीं कर सकती। नरेन्द्र शुद्ध सतोगुणी है। वह अखंड के राज्य के चार में से एक है। वह सप्तर्षियों में से एक है। उसके गुणों का अंत नहीं।

वाचक : नरेन्द्रनाथ परमहंस श्री रामकृष्ण के संपर्क में पहले पहल सन् १८८० ई. में आये थे और सन् १८८६ ई. तक वे उनकी सेवा में बराबर बने रहे, जिस साल परमहंस देव ने महासमाधि ली। इस बीच नरेन्द्रनाथ कालेज में अध्ययन

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भी करते थे और ध्यान-धारणा की साधना और तपस्या से गद्‌गद् होकर कहा करते :

रामकृष्ण : गाने, बजाने, विद्याभ्यास, बोल-चाल और धार्मिक विषय-सभी बातों में नरेन्द्र होशियार है। ध्यान करने बैठता है, तब रात बीत जाती है और सवेरा हो जाता है, उस पर भी उसे सुध नहीं आती और उसका ध्यान समाप्त नहीं होता। हमारा नरेन्द्र तो खरा सिक्का है बजाकर देखो, कैसा खन्-खन् बोलता है!

वाचक : खरे सोने की पहचान आग में होती है और पुरुष की जांच भगवान् विपत्तियां भेजकर करते हैं। नरेन्द्रनाथ अपनी साधना के पथ पर क्षिप्र गति से आगे बढ़ रहे थे कि अचानक उनके पिता का देहांत हो गया और तुरंत अवस्था यह हो गयी कि जिस परिवार का मासिक व्यय एक हजार रूपये था, उसके लिए हर महीने तीस रूपये जुटाना भी कठिन होने लगा। सांसारिक विषयों से उदासीन नरेन्द्रनाथ एकाएक दरिद्रता के कठोर आघात से चौंक पड़े। उनका जो हृदय आस्था के उदय से शांत हो चला था, उसके भीतर शंकाएं फिर उत्पन्न होने लगीं और वे सोचने लगे :

नरेन्द्र : भगवान् क्या, सचमुच ही दरिद्रों का कातर क्रंदन नहीं सुनते? क्या सृष्टि से उठनेवाली क्रंदन-ध्वनि उनके कानों तक नहीं पहुंचती? जो भगवान् इस लोक में क्षुधार्तों को एक टुकड़ा रोटी देकर जीवित नहीं रख सकते, वे ही अंत में, हमें स्वर्ग-सुख देकर सुखी बनायेंगे, यह कैसे संभव है?

वाचक : किंतु, यह ऊपरी तरंगें मात्र थीं। अब आस्था उनकी अस्थियों में समा चुकी थी। अतएव उन्होंने सोचा :

नरेन्द्र : क्यों नहीं, श्री रामकृष्ण से कहूं कि वे अपनी माता से प्रार्थना करें और कहें कि नरेन्द्र के परिवार के संकटों को दूर कर दो।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाचक : किंतु श्री रामकृष्ण का विचार हुआ कि ऐसी प्रार्थना मंदिर में जाकर नरेन्द्र को खुद करनी चाहिए। निदान, नरेन्द्र काली के मंदिर में गये, किंतु अपनी आर्थिक कठिनाइयों की बात उनके मुख से नहीं निकल पायी। उलटे काली से प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा :

नरेन्द्र : मां, विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो, माता, तुम्हारी कृपा से सदा ही तुम्हें देख सकूं।

वाचक : श्री रामकृष्ण ने नरेन्द्र को तीन बार काली के पास भेजा, किंतु तीसरी बार भी नरेन्द्रनाथ मुह खोलकर मां के चरणों में सांसारिक सुखों के लिए प्रार्थना नहीं कर सके। तब श्री रामकृष्ण ने कहा :

रामकृष्ण : तू जब मांग नहीं सका, तो तेरे भाग्य में सांसारिक सुख है ही नहीं। फिर भी, तुम लोगों को सूखी रोटी और मोटे वस्त्र की कमी नहीं होगी।

वाचक : नरेन्द्रनाथ को अपने जीवन की दिशा का पक्का ज्ञान हो गया। संतोष के साथ वे एक स्कूल में शिक्षक का काम करने लगे। किंतु सन् १८८५ ई. में जब रामकृष्ण के गले में घाव हो गया, नरेन्द्रनाथ ने अपनी नौकरी पर लात मार दी और वे गुरु के पास रहकर उनकी सेवा में लीन हो गये। इसी दौर में श्री रामकृष्ण ने एक दिन एकांत पाकर नरेन्द्रनाथ से कहा :

रामकृष्ण : देख, साधना करते समय मुझे अष्ट सिद्धियां प्राप्त हुई थीं। उनका किसी दिन कोई उपयोग नहीं हुआ। तू उन्हें ले ले, भविष्य में तेरे बहुत काम आयेंगी।

वाचक : नरेन्द्र बोले :

नरेन्द्र : महाराज, क्या उनसे भगवत्प्राप्ति में कोई सहायता मिलेगी?

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

रामकृष्ण : नहीं, सो तो नहीं मिलेगी, किंतु इस लोक की कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रहेगी।

नरेन्द्र : तब तो महाराज, वे मुझे नहीं चाहिए।

वाचक : श्री रामकृष्ण चाहते थे कि नरेन्द्र वैयक्तिक मुक्ति के मोह में न पड़कर अपने को संसार की सेवा के योग्य बनायें, मानवता के भीतर जागरण का शंख फूंकने की तैयारी करें, किंतु नरेन्द्रनाथ वैयक्तिक आनंद के लिए निर्विकल्प समाधि में मग्न रहना चाहते थे। इस पर एक दिन रामकृष्ण ने उन्हें फटकारते हुए कहा :

रामकृष्ण : नरेन, बार-बार यही बात कहते तुझे लज्जा नहीं आती? समय आने पर कहां तो तू वट वृक्ष की तरह बढ़कर सबको शांति की छाया देने वाला है और कहां आज अपनी ही मुक्ति के लिए बेचैन हैं? इतना क्षुद्र आदर्श क्यों पाल रहा है?

वाचक : नरेन्द्र बोले :

नरेन्द्र : निर्विकल्प समाधि न होने से मेरा मन शांत नहीं होगा और यदि वह न हुआ, तो मैं वह सब कुछ नहीं कर सकूंगा।

वाचक : श्री रामकृष्ण ने फिर नरेन्द्र को डांटा :

रामकृष्ण : तू क्या अपनी इच्छा से करेगा? जगदंबा तेरी गरदन पकड़कर करवायेंगी। तू नहीं करे, तेरी हड्डियां करेंगी।

(शोक-व्यंजक वाद्य)

वाचक : सन् १८८६ ई. के १५ अगस्त के दिन परमहंस श्री रामकृष्ण ने शिष्यों को

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्री जगदंबा के चरणों में सौंपकर महासमाधि ले ली। सभी गुरुभाईयों के साथ नरेन्द्रनाथ का भी जीवन अंधकारपूर्ण हो गया। कहां तो श्री रामकृष्ण के सान्निध्य में शिष्य अपने को सदेह आध्यात्मिकता की गोद में आसीन पाते थे और कहां अब प्रकाश की कोई किरण भी दिखाई नहीं देती। नरेन्द्रनाथ को अपना नेता मानकर सभी शिष्य दिन-रात कीर्तन करने लगे। किंतु जगदंबा और रामकृष्ण की वे जितनी भी जयजयकार करें, किसी के भी समक्ष कोई आध्यात्मिक आलोक प्रत्यक्ष नहीं होता। निदान, बाल-ब्रह्मचारियों का यह दल तीर्थाटन के बहाने इधर-उधर विकीर्ण होने लगा और स्वयं नरेन्द्रनाथ बिना किसी साधन के भारत-भ्रमण को निकल पड़े।

वाचिका : हाय री विवशता! आध्यात्मिक साधना भी कितनी कठोर होती है!

वाचक : नरेन्द्रनाथ अब गैरिक वस्त्र पहनने लगे थे और संबल के नाम पर उनके पास केवल दो छोटे-छोटे ग्रंथ थे। एक ग्रंथ गीता थी, दूसरा ग्रंथ इमिटेशन आफ क्राइस्ट था। काशी में स्वामी जी ने तैलंगस्वामी के दर्शन किये और वहीं से गाजीपुर जाकर उन्होंने पवहारी बाबा से मुलाकात की। निःसंबल घूमना, जो कुछ मिल जाय वही खाकर संतुष्ट हो जाना और जहां भी संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान् मिल जायें, वहीं संस्कृत का अभ्यास करने को रुक जाना, यह उनकी साधना का रूप हो गया।

वाचिक : स्वामी विवेकानंद कब तक इस प्रकार घूमते रहे?

वाचक : श्री रामकृष्ण का स्वर्गवास सन् १८८६ ई. में हुआ और स्वामी विवेकानंद अमरीका सन् १८९३ ई. में गये। इस बीच के छह या सात वर्ष स्वामी जी ने भारत-भ्रमण और धर्म-ग्रन्थों के स्वाध्याय में ही व्यतीत किये। यही वह साधना थी, जिसने स्वामी विवेकानंद को तपस्या में जलाकर सोने के समान

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

निखार दिया। यही वह समय था, जब उनके जन्म-जात संस्कार पपड़ी की तरह टूटकर हवा में उड़ गये। एक दिन स्वामी जी पैदल ही वृन्दावन की ओर जा रहे थे कि रास्ते में एक व्यक्ति उन्हें चिलम पीता दिखाई पड़ा। स्वामी जी ने उसके पास ठहरकर कहा :

स्वामीजी : क्यों भाई, चिलम में एक दम मुझे भी लगाने दोगे?

वाचक : वह व्यक्ति बोला :

व्यक्ति : महाराज, मैं तो जाति का भंगी हूं। क्या आप भंगी की चिलम पियेंगे?

वाचक : बात सुनकर स्वामी जी आगे बढ़ गये। किंतु अभी दो कदम भी वे नहीं चले थे कि आत्मा ने उन्हें धिक्कार भेजी :

स्वामी जी : हाय, यह मैंने क्या किया? मैंने तो जाति, कुल, मान सभी को त्यागकर संन्यास लिया है। फिर भंगी जानकर मेरा सोया हुआ जाति-अभिमान कैसे जाग पड़ा?

वाचक : स्वामी जी तुरंत लौट पड़े और उस भंगी से चिलम मांगकर उन्होंने बड़े शौक से उसमें दम लगाया। इसी प्रकार राजपूताना घूमते समय स्वामी जी एक मुसलमान वकील के घर ठहर गये थे। उनकी शोहरत से खिंचकर खेतरी दरबार के एक मुलाजिम जगमोहन लाल स्वामी जी से मिलने को आये और पूछ बैठे :

जगमोहनलाल : स्वामीजी! आप हिंदू संन्यासी होकर मुसलमान के घर पर हैं? आपके भोजन आदि को ये मुसलमान महोदय छू सकते हैं।

वाचक : स्वामी जी ने कहा :

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी जी : मैं संन्यासी हूं। मैं सभी सामाजिक आचार-व्यवहार से परे हूं। मैं एक मेहतर के साथ भी बैठकर भोजन करता हूं। यह तो ईश्वर का निर्देश है।

वाचक : इस पर्यटन के दौरान स्वामी जी पोरबंदर पहुंचे और वहीं पंडित शंकर पांडुरंग ने उन्हें पहले-पहल यह परामर्श दिया कि :

पांडुरंग : स्वामी जी, मैं नहीं समझता कि आप इस देश में धर्म प्रचार करके विशेष कुछ कर सकेंगे। आपके उदार विचारों को हमारे देशवासी सहज ही समझ नहीं पायेंगे। आप पहले पाश्चात्य देशों में जाइए।

वाचक : स्वामी जी ने थोड़ी देर सोचकर कहा :

स्वामी जी : हां, एक दिन प्रभात काल में समुद्र-तट पर खड़ा मैं तरंग-माला का नृत्य-कौशल देख रहा था। एकाएक मन में यह बात आयी कि इस विक्षुब्ध समुद्र को लांघकर मुझे किसी सुदूर विदेश में जाना होगा। परंतु, पता नहीं, यह कैसे संभव होगा।

वाचक : किंतु यह स्वप्न संभव हो गया। सन् १८९३ ई. में कोलंबस के अमरीका-अनुसंधान की चतुर्थ शतवार्षिकी मनाने के लिए शिकागो शहर में एक विश्व मेला का आयोजन किया जाने वाला था। उसी मेले में एक धर्म-संसद का भी आयोजन किया जाने वाला था। अतएव स्वामी जी के सभी प्रशंसक उनसे यह कहने लगे कि हिंदूधर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए आपको इस संसद में अवश्य जाना चाहिए।

वाचिका : क्या धर्म-संसद की ओर से स्वामी जी को निमंत्रण आया था?

वाचक : नहीं, निमंत्रण नाम की कोई चीज नहीं थी। यह केवल अदृष्ट की प्रेरणा थी, यह केवल ईश्वरीय संकेत था। स्वामी जी ने स्वयं कहा था, मैं इस संसद में

अवश्य जाऊंगा क्योंकि यह धर्म-संसद केवल मेरे ही निमित्त आयोजित होने जा रही है।

वाचिका : कैसा प्रबल आत्मविश्वास!

वाचक : इस आत्मविश्वास का औचित्य तब प्रकट हुआ, जब स्वामी विवेकानंद शिकागो पहुंच और धर्म-संसद के मंच पर आसीन हुए। पहले दिन उनका भाषण अंत में इसलिए रखा गया कि वे सभी वक्ताओं से उम्र में छोटे और लगभग अजनबी मेहमान थे। किंतु दूसरे दिन से उनका भाषण अंत में इसलिए रखा जाने लगा कि जनता उन्हीं को सुनने के लिए अंत तक बैठी रहती थी।

वाचिका : स्वामी जी की कीर्ति सुनकर हमें आज गौरव का बोध होता है।

वाचक : ११ सितम्बर, सन् १९६३ का दिन इसीलिए महत्वपूर्ण है। स्वामी जी मंच पर खड़े हुए, उन्होंने सभा को संबोधित करते हुए जैसे ही यह कहा :

स्वामी जी : अमरीका-निवासी बहनों और भाइयों!

(तालियों की गड़गड़ाहट: हर्ष-ध्वनि)

वाचक : पहले ही वाक्य से स्वामी जी ने सभा के हृदय पर अधिकार कर लिया और सात हजार नारियां और नर खड़े होकर तालियां बजाने लगे और कोई दो मिनट तक वे तालियां बजाते रहे। दूसरे ही दिन से सारे अमरीका में उनकी पूजा आरंभ हो गयी। अखबार उनके अभिनंदन में मुक्त कंठ से लेख लिखने लगे और चौक-चौक पर उनके फोटो का प्रदर्शन किया जाने लगा। सभा के मंच पर स्वामी जी के आते ही जनता उल्लसित हो उठती थी और मंच पर

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

जब वे कभी इधर-से उधर जाने लगते, तो इतने से भी श्रोताओं के भीतर आनंद का ज्वार उमड़ पड़ता और वे जोर-जोर से तालियां बजाने लगते थे।

वाचिका : पाश्चात्य जगत् के लिए स्वामी जी का क्या उपदेश था?

वाचक : स्वामी जी धार्मिक एकता के मसीहा थे। शिकागो की धर्म-संसद में उन्होंने पहले ही दिन कहा :

स्वामी जी : सांप्रदायिकता, धार्मिक द्वेष और कट्टरता ने इस खूबसूरत धरती को बहुत दिनों से जकड़ रखा है। इन शक्तियों ने धरती पर मारकाट मचायी है, उसे बार-बार खून से सराबोर किया है। अगर इन शक्तियों ने अपने सिर नहीं उठाये होते, तो संसार आज की अपेक्षा अधिक उन्नत और अधिक सौन्दर्य युक्त होता। मगर इन शक्तियों की आयु अब समाप्ति पर है। आओ, आज ही हम सांप्रदायिक द्वेष और कट्टरता की मृत्यु की घोषणा कर दें और यह एलान कर दें कि आज से कोई भी व्यक्ति, कलम या तलवार से, दूसरे के धर्म पर, दूसरे के पंथ पर आघात नहीं करेगा।

वाचक : एक और भाषण में स्वामी जी ने कहा था :

स्वमी जी : हम अन्य धर्मों को भी बर्दाश्त करें, यह यथेष्ट नहीं है। उचित यह है कि सभी धर्मों को हम अपना ही धर्म समझें।

वाचक : स्वामी जी वेदांत के पुजारी थे और वेदांत के आधार पर ही वे सारे जगत् को एक करना चाहते थे। उनका कहना था :

स्वामी जी : हिंदुओं का विश्वास है कि मनुष्य शरीर नहीं, आत्मा है। और प्रत्येक आत्मा एक वृत्त है, जिसकी परिधि का पता नहीं है। अनेक होते हुए भी सभी मनुष्य

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

एक हैं, क्योंकि एक ही परमात्मा फैलकर अनेक हो गया है।

वाचक : अमरीकी जनता को भारत के विषय में नयी दृष्टि देते हुए उन्होंने कहा था :

स्वामी जी : भारतवर्ष को आवश्यकता धर्म की नहीं, रोटी की है, धन की है, कल-कारखानों और उद्योग की है। भूखों के आगे धर्म नहीं, रोटी परोसो, यही न्याय है। जो क्षुधित हैं, उन्हे रोटी नहीं देकर अगर तुम दर्शन सिखाओगे तो यह पाप होगा।

वाचक : ज्यों-ज्यों अमरीका में स्वामी जी का सुयश फैला, त्यों-त्यों शुभ संवादों को सुनकर सारा भारत-देश स्वामी जी के प्रति श्रद्धा और गौरव से विभोर हो उठा। किंतु कुछ दकियानूस लोग इस बात की शिकायत भी करने लगे कि स्वामी जी विदेश में खान-पान के बारे में कट्टरता का निर्वाह नहीं कर रहे हैं। यह बात जब स्वामी जी को मालूम हुई, उन्होंने अपने गुरु-भाई को लिखा :

स्वामी जी : अगर कोई हिंदू कट्टर हिंदू की तरह खान-पान में कट्टरता बरतने का अयाचित उपदेश देता है, तो उससे कहो कि वह एक ब्राह्मण रसोइया और उसके साथ कुछ धन यहां भेज दे।

वाचक : धर्म-धर्म के बीच, देश-देश के बीच स्वामी जी आदान-प्रदान का संबंध चाहते थे। राजा प्यारे मोहन मुखर्जी को एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

स्वामी जी : मैंने निश्चित रूप से यह जान लिया है कि कोई व्यक्ति या जाति दूसरों से विच्छिन्न होकर जीवित नहीं रह सकती। आदान-प्रदान जगत् का नियम है। भारतवर्ष के पास जो कुछ है, उसका प्रचार सारे विश्व में होना चाहिए और बदले में दूसरे लोग जो कुछ देंगे, उसे ग्रहण करने को भारतवर्ष को तैयार रहना चाहिए। क्योंकि संप्रसारण जीवन है और संकोचन मृत्यु; प्रेम जीवन है और घृणा मृत्यु।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाचक : अमरीका और यूरोप में स्वामी जी कोई चार वर्ष घूमते रहे। इस बीच उन्होंने कितने ही नर-नारियों को अपना शिष्य बनाया और उन्हें मन्त्र दिया। न्यूयार्क में उन्होंने एक वेदान्त-समाज की स्थापना की, जो आज भी कायम है। वे दिन-रात धर्म-चर्चा में लगे रहते थे और किसी-किमी दिन उन्हें बारह-चौदह व्याख्यान देना पड़ता था। उनकी विद्याबुद्धि और तेजस्विता, उनकी कर्मठता और अध्यवसाय, उनकी देशभक्ति और उनके विश्वप्रेम का प्रभाव कुछ ऐसा पड़ा कि सभी लोग उनके भक्त हो गये और बहुतों के भीतर यह भाव जाग्रत हो गया कि, हो न हो, मानवता के लिए अगला संदेश भारत से ही आने वाला है। अंत में, अपनी विशाल कीर्ति और अपने असंख्य भक्तों को पीछे छोड़कर स्वामी जी ने ३० दिसंबर, १८९६ ई. को यूरोप से भारत के लिए प्रस्थान किया।

(उत्साहवर्धक वाद्य, कल-कल ध्वनि, भीड़ की आवाज, स्वागतार्थ जयघोष)

जय जय विवेकानन्द गैरिक-पट-धारी,
जय जय श्री रामकृष्ण-व्रत सहायकारी।

यज्ञाहुति-होम-ज्वाल,
उन्नत-मन, उच्च-भाल,
जय जय प्रज्ञा विशाल,
विश्व-मठ-बिहारी।

वाचक स्वामी जी जब चार वर्षों के प्रवास से वापस हुए, भारत और श्रीलंका में उत्साह का पारावार उमड़ पड़ा। दोनों देशों के प्रधान-प्रधान नगरों की प्रमुख जनता ने अपने यहां स्वागत-समितियां बनायीं। स्वामी जी पहले कोलंबो में

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

ही उतरे। उन्हें लोग जब जुलूस में लेकर निकले, तब जनता ने घोड़ों को गाड़ी से खोलकर अलग कर दिया और नवयुवक खुद ही गाड़ी खींचने लगे। श्रीलंका से विदा होकर स्वामी जी ने जब भारतभूमि का स्पर्श किया, तब पाबन में भी वही दृश्य उपस्थित हो गया। फिर परमकुड़ी, मानमदुरा, त्रिचिनापल्ली और तंजौर होकर स्वामी जी मद्रास पधारे और सर्वत्र जनता ने उनका देवता के समान सत्कार किया।

वाचिका : भारत से वे भिक्षु के रूप में विदेश गये थे, किंतु विदेश से वे सम्राट् के समान वापस आये।

वाचक इतना ही नहीं। भारत से विदेश वे धर्मदूत के रूप में गये थे, किंतु भारत वे क्रांतिदूत बनकर वापस आये। कोलंबो से मद्रास तक उन्होंने जिस उद्‌बोधन-मंत्र का उद्‌घोष किया, वह यह था :

स्वामी जी : आगामी पचास वर्षों तक तुम्हें केवल जननी-जन्मभूमि की आराधना करनी है। और सभी देवताओं को तब तक के लिए भूल जाओ। दूसरे जितने भी देवता हैं, सोये हुए हैं। इस समय तुम्हारा एकमात्र देवता तुम्हारा राष्ट्र है। तुम लोग निष्फल देवता की खोज में दौड़ रहे हो, किंतु तुम्हारे चारों ओर जो देवता खड़े हैं, उन विराट् की पूजा करने की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं है। ये सारे-के सारे मनुष्य ये सारे पशु तुम्हारे ईश्वर हैं और तुम्हारे स्वदेशवासीगण ही तुम्हारे प्रथम उपास्य हैं।

वाचक : त्रिवेंद्रम में स्वागत का उत्तर देते हुए स्वामी जी ने कहा था :

स्वामी जी : मैंने पैदल ही सारे भारत की यात्रा की है और जनता के बीच जो अशिक्षा, दरिद्रता और अकर्मण्यता फैली हुई है, उसे मैंने अपनी आँखों से देखा है। मेरे हृदय में आग लग गयी है। मैं इस दुरावस्था को बदल डालने के संकल्प से

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बेचैन हूँ। यह मत कहो कि लोग अपने कर्मों के कारण दुरावस्था में पड़े हैं, तो हमारा कर्म इस दुरावस्था से उनका उद्धार करना है। अगर तुम ईश्वर की खोज में हो, तो पहले मनुष्य की सेवा में हाथ बटाओ। नारायण के समीप पहुंचने का मार्ग दरिद्र नारायण की सेवा का मार्ग है, भारत की करोड़ों भूखी जनता की सेवा का मार्ग है।

वाचक : स्वामी विवेकानन्द भारत के पूंजीभूत रूप थे। स्वामी विवेकानंद भारत के पूर्ण अवतार थे। भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन जिन-जिन लक्ष्यों को लेकर आगे चलनेवाला था, स्वामी जी ने उन सबका स्पष्टीकरण बड़े ओज से किया था। मानमदुरा में अभिनंदन का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था :

स्वामी जी : अब हम न तो वेदांती हैं, न हम पौराणिक या तांत्रिक रह गये हैं। अब तो हम मात्र छुआछूतपंथी भर शेष हैं। हमारा धर्म सिमटकर रसोईघर में कैद हो गया है और भात रांधने की हांडी हमारा भगवान् बन गयी है तथा हमारा मज़हब यह विचार हो गया है कि हमें कोई छुए नहीं, क्योंकि हम पवित्र हैं।

वाचक : आर्य और द्रविड़ दो नहीं, एक हैं, इस विषय की चर्चा करते हुए स्वामी जी ने मद्रास में कहा था :

स्वामी जी : अब एक नया सिद्धान्त निकला है कि दक्षिण भारत में जो द्रविड़ रहते हैं, वे उत्तर में बसने वाले आर्यों से भिन्न हैं, क्योंकि उनकी भाषाएँ अलग-अलग हैं। श्रीमान् भाषाशास्त्री से मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि श्रीमन्! आपकी बातें निराधार हैं। आर्यों और द्रविड़ों के बीच भाषा को छोड़कर मैं और कोई भेद नहीं देखता। अतएव मेरी मान्यता है कि भिन्न भाषाएँ बोलने पर भी आर्य और द्रविड़ दो नहीं, एक हैं। इसलिए भाईयो! भाषाशास्त्रियों की इन बेहूदी बातों में विश्वास मत करना। तुम सब-के-सब एक हो। यह सारा भारत एक देश है।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

वाचक : और जिस जातिवाद के दलदल में यह देश अब भी फंसा हुआ है, उससे निस्तार का उपाय बताते हुए स्वामी जी ने कहा था :

स्वामी जी : ये जात-पांत झगड़े मेरी समझ में नहीं आते। सभी जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। किन्तु तुम सब मिलकर यह घोषणा क्यों नहीं कर देते कि तुम सब-के-सब ब्राह्मण हो? तुम्हें यह करने से रोकता कौन है? बहुत अच्छा हो अगर यह देश केवल ब्राह्मणों का देश हो जाय और सभी लोग संस्कृत पढ़ना आरंभ कर दें। क्योंकि जाति तुम्हारी चाहे जो भी हो, संस्कृत पढ़े बिना ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा तुम्हें नहीं मिलेगी।

वाचक : स्वामी जी को श्री रामकृष्ण पावक कहा करते थे। और सचमुच ही विदेश से लौटने पर स्वामी जी की वाणी में अग्नि का विस्फोट होने लगा।

स्वामी जी : जीवन नहीं, मृत्यु का अनुसंधान करो। अपने को उछालकर तलवार की नोंक पर फेंक दो और जो कुछ भी भीषण या भयानक दीख पड़े, उससे मिलकर एकाकार हो जाओ।

वाचक : स्वामी जी की आयु जैसे-जैसे बढ़ती गयी, उनके भीतर पावक और भी निर्भीक होता गया।

स्वामी जी : मेरी आयु जैसे-जैसे बढ़ती है, वैसे ही वैसे मेरा यह विश्वास भी बढ़ता जाता है कि जो असली तत्व है, वह आग में है, मर्दानगी और पौरुष में है। यह मेरा नवीन धर्म-शास्त्र है। अगर तुम्हें दुष्कर्म करना है, तो वह दुष्कर्म भी बहादुरी से करो, छिपकर छोटे पैमाने पर नहीं, खुलकर बड़े पैमाने पर करो।

वाचक : स्वामी जी मृत्यु और विजय को एकाकार देखते थे। जो विजयी होने वाले हैं, वे मृत्यु से नहीं डरते।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी जी : मृत्यु की पूजा करो, भीम की पूजा करो, भीषण और भयानक की आराधना में मग्न रहो। लड़ो और संघर्ष करो, भले ही तुम पराभूत क्यों न हो जाओ, क्योंकि यही ध्येय सबसे ऊंचा और महान् है।

वाचक : स्वामी जी संत और महात्मा थे। उन्होंने राजनीति की ओर झांका भी नहीं था। किन्तु भारत का राष्ट्रीय तेज उन्हीं के उद्‌गारों से प्रकट हो गया। रामनद में बोलते हुए उन्होंने भारत के भविष्य को स्पष्ट देख लिया था।

स्वामी जी : भारत की तंद्रा छूट रही है। हमारा देश सुदीर्घ निद्रा से जाग रहा है। अब भारत को कोई रोक नहीं सकेगा। अब भारत को कोई विदेशी शक्ति दासता में नहीं रख सकेगी। क्योंकि यह भीमकाय दैत्य अब अपने पांवों पर खड़ा हो रहा है।

वाचक : १८९७ ई. में स्वामी जी ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और वे संन्यासियों का एक ऐसा संघ बनाने में निरत हुए, जो दुःखी मानवता की सेवा करने में समर्थ हो। किंतु एक गुरुभाई को लगा कि मिशन का वास्तविक ध्येय ईश्वर की आराधना और श्री रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार होना चाहिए। केवल परोपकार का काम करने से संन्यासीगण सासांरिक हो जायेंगे। यह सुनते ही स्वामी जी ने बिगड़कर कहा :

स्वामी जी : कौन तुम्हारी भक्ति और मुक्ति को लेकर माथापच्ची करता है? शास्त्र क्या कह रहे हैं या नहीं कह रहे हैं, इसे कौन सुनता है? यदि मैं घोर तमोगुण में डूबे हुए अपने देशवासियों को कर्मयोग के द्वारा अनुप्राणित कर वास्तविक मनुष्य की तरह अपने पैरों पर खड़ा कर देने में समर्थ हूँ, तो मैं आनंद के साथ लाख बार नरक जाऊँगा। मैं तुम्हारे रामकृष्ण या अन्य किसी का चेला नहीं हूँ। जो लोग अपनी भक्ति-मुक्ति की कामना को छोड़ दरिद्रनारायण की

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सेवा में जीवन को उत्सर्गित करेंगे, मैं उन्हीं का चेला, भृत्य और क्रीत दास हूँ।

वाचक : कलकत्ते में थोड़े दिनों तक विश्राम लेकर स्वामी फिर हिमालय की ओर चले गये तथा अल्मोड़ा और श्रीनगर में घूमते रहे। इसी यात्रा में वे अमरनाथ भी गये थे और श्रीनगर के पास क्षीर भवानी की भी उन्होंने पूजा की थी। इस यात्रा से लौटने के बाद उन्होंने बेलूड़ मठ की स्थापना की और सभी गुरु-भाईयों को बुलाकर कहा :

स्वामी जी : बंधुओं, हम लोक-कल्याण के लिए अवतीर्ण अपने प्रभु से प्रार्थना करें कि वे अनेक वर्षों तक इस स्थान में निवास करें। इस कर्मकेन्द्र से बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय- सभी संप्रदायों, सभी धर्मों के भेदभाव को निरस्त करनेवाली भावधारा प्रवाहित हो।

वाचक : इन दिनों स्वामी जी की चिंता का विषय भारत देश था। वे कहा करते थे :

स्वामी जी : मैं उस धर्म का प्रचार करना चाहता हूँ, जिससे मर्द तैयार हों। दो हजार वीर-हृदय, विश्वासी, चरित्रवान् और बुद्धिमान् युवक तथा तीस करोड़ रुपये मिल जाने पर मैं भारत को अपने पैरों पर खड़ा कर दे सकता हूँ।

वाचक : उन्हीं दिनों एक पंचाबी सज्जन स्वामी जी के पास धर्मचर्चा के उद्देश्य से आये थे, किन्तु बात उस दिन समाज तक ही घूमकर रह गयी। इससे वे सज्जन किंचित् दुःखी होकर बोले :

सज्जन : स्वामी जी, आपसे धर्मोपदेश सुनने के लिए हम बड़ी आशा लगाकर आये थे, पर दुर्भाग्य से चर्चा साधारण विषयों की ही हुई। आज का दिन व्यर्थ गया।

वाचक : स्वामी जी का तपोदीप्त मुखमंडल व्यथा और करुणा से गंभीर हो उठा। वे

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बोल उठे :

स्वामी जी : महाशय, जब तक मेरी जन्मभूमि का एक कुत्ता भी भूखा रहेगा, तब तक उसे आहार देना ही मेरा धर्म है। इसके अतिरिक्त और जो कुछ भी है, अधर्म है।

वाचक : संन्यासियों के कर्तव्य क्या हों, इस विषय में स्वामी जी के विचार क्रान्तिकारी थे। शिष्यों से उन्होंने एक दिन कहा था कि :

स्वामी जी : अत्यंत ऊँचे आदर्श राष्ट्र को पंगु बना डालते हैं। वैयक्तिक मुक्ति की खोज में मत भटको। तुम्हारे चारों ओर जो दुःखी जनता खड़ी है, उसी की सेवा में शक्ति लगाओ।

वाचक : १८९९ ई. के जून महीने में स्वामी जी फिर विदेश भ्रमण को निकल गये। इस बार भी विदेशों में उनके प्रवचन और व्याख्यान अबाध गति से चलते रहे। बल्कि ज्यों-ज्यों उनकी आयु बढ़ती थी, उनकी आत्मदान की उमंग तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी। धीरे-धीरे उन्हें यह आभास होने लगा कि मेरा कार्यकाल समाप्ति के पास पहुँच रहा है। १९०० ई. के १८ अप्रैल को अपनी एक शिष्या के पत्र में उन्होंने लिखा था :

स्वामी जी : मैं अच्छा हूँ। मानसिक स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। युद्ध में हार-जीत, दोनों ही हुई। अब बोरिया-बिस्तर बांधकर उस महान् मुक्तिदाता की प्रतीक्षा में बैठा हूँ। अब शिव, पार करो मोरी नैया।

वाचक : पत्र में और भी लिखा था :

स्वामी जी : देह जाने के बाद मुझे मुक्ति मिले अथवा देह रहते ही मैं मुक्त हो जाऊँ, परन्तु वह पुराना विवेकानंद चला गया है, चिरकाल के लिए चला गया है,

वह अब और नहीं लौटेगा। शिक्षादाता, गुरु, नेता, आचार्य चला गया। रह गया है पहलेवाला वही बालक, प्रभु का वही चिरशिष्य, वही चिर पदाश्रित दास।

वाचक : सन् १९०० के ९ दिसंबर को स्वामी जी अचानक भारत लौटकर बेलूड़ मठ में पहुंच गये। गुरु-भाइयों ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। फिर वे देशाटन को निकले और लोगों के बीच अपना संदेश बिखेरते रहे। प्रभु का यह चिर-पदाश्रित दास, श्री रामकृष्ण का यह अपराजेय संदेशवाहक अब अपने भीतर क्लांति का अनुभव करने लगा था। स्वामी जी क्लांत हो रहे थे, किंतु उनका अधूरा कार्य उन्हें बेचैन बनाये रहता था। खाट पर लेटे-लेटे भी वे बेचैनी के साथ भारत माता की चिंता में लीन रहते थे।

स्वामी जी : तुम्हारे दुःखों को मिटाने के लिए क्या करूँ माँ? हाय, आत्म-विस्मृत भारत-संतान! इतना पुकारकर भी उत्तर नहीं पाया। पंजाब, बंगाल, बंबई, मद्रास, जहाँ भी देखता हूँ, वहीं जराजीर्ण स्थविरता दिखायी देती है। राष्ट्र की इस जड़ता को मिटा दूँगा। इस चेष्टा में अपने प्राण दे डालूंगा। निराशा के घनांधकार में आशा का आलोक जलाऊँगा। चेष्टा व्यर्थ हो, शत बार व्यर्थ हो, उद्देश्य को नहीं छोड़ूँगा।

वाचक : कभी बोलते :

स्वामी जी : यदि देह छूट ही गयी तो इससे क्या? मैंने संसार को वर्षों तक सोचने की सामग्री दे दी है।

वाचक : सन् १९०१ ई. में अखिल भारतीय कांग्रेस का जलसा कलकत्ते में हुआ। उस समय नेताओं ने स्वामी जी से भेंट की थी, उनसे वार्तालाप किया था और

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उस दिन स्वामी जी सभी नेताओं के साथ हिंदी में ही बोले थे। स्वामी जी हिंदी बहुत अच्छी जानते थे। अपने पंजाब भ्रमण के समय उन्होंने हिंदी में कुछ ओजस्वी भाषण भी दिये थे। कांग्रेस के बारे में जब लोगों ने उनकी राय पूछी तो उन्होंने कहा :

स्वामी जी : हाँ, जिससे समग्र भारत में एकता स्थापित हो, ऐसी संस्था बुरी नहीं है।

वाचक : अंतिम समय में बेलूड़ मठ में पड़े-पड़े स्वामी जी भारत की दीन-दलित जनता का ध्यान किया करते थे।

स्वामी जी : अहो, देश के गरीबों के लिए कोई नहीं सोचता है। जो राष्ट्र की रीढ़ की हड्डियाँ हैं, जिनके परिश्रम से अन्न पैदा होता है, जिन मेहतरों और भंगियों का एक दिन काम बंद हो जाने पर शहर में हाहाकार मच जाता है, उनके साथ सहानुभूति दिखलाने वाला कोई नहीं है, उन्हें सांत्वना देनेवाला कोई नहीं है। 'मत छुओ, मत छुओ' हाय, देश में क्या और कोई दया-धर्म नहीं है? इच्छा होती है, छुआछूत की सीमा तोड़कर पुकार उठूँ, अरे, ओ दीन, दुःखी, पतित और निर्धन जीवों, तुम सब कहाँ हो? आओ, मैं श्री राम-कृष्ण के नाम पर तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम्हारे जागे बिना माँ नहीं जागेंगी।

वाचक : संत हृदय की यह कातर पुकार भारत के नभोमंडल में गुंजित हो गयी। संत निरंतर अपनी पुकार भेजते रहे किंतु अब वह समय समीप था, जब पृथ्वी इस महासूर्य को खोनेवाली थी। श्री रामकृष्ण ने कहा था कि जिस दिन नरेन्द्र को यह ज्ञात हो जायेगा कि वह कौन है, उस दिन वह शरीर छोड़ देगा। सो एक दिन एक गुरुभाई ने उनसे पूछ लिया :

गुरुभाई : अच्छा स्वामी जी! क्या आप यह समझ सके हैं कि आप कौन हैं?

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी जी : हां, अब मैं समझ गया हूँ।

(आश्चर्यव्यंजक वाद्य)

वाचक : सुनते ही गुरुभाई के हृदय पर वज्र गिर गया। स्वामी जी को आत्म-ज्ञान हो गया है यानी अब उनका महाप्रस्थान समीप है। और तब भी अभी वे केवल उन्चालीस वर्ष के जवान थे। इसके बाद एक घटना और घटी। एकादशी के दिन स्वामी जी ने सभी शिष्यों को अपने सामने भोजन कराया और जब वे लोग खाकर उठे, स्वामी जी खुद ही उनके हाथ धुलाने लगे। एक शिष्य त्राहि-त्राहि कर उठा :

शिष्य : अरे आप क्या कर रहे हैं महाराज? मैं तो आपका सेवक हूँ। आपसे सेवा लेने का मुझे अधिकार नहीं है।

वाचक : स्वामी जी ने कहा :

स्वामी जी : क्या ईसा मसीह ने अपने शिष्यों के पैर नहीं धोये थे?

(फिर आश्चर्यव्यंजक वाद्य)

वाचक : सबके मन में यह बात आयी कि ईसा ने अपने शिष्यों के पांव उस दिने धोये थे, जो उनके जीवन का आखिरी दिन था। किंतु यह बात किसी की भी जुबान पर नहीं आ सकी। आखिर को सन् १९०२ ई. की ४ जुलाई आ पहुँची। स्वामी जी उस दिन और दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक स्वस्थ थे। ठाकुर-घर में घूमते हुए वे मंद-मंद 'चल मन निज निकेतने' वाला वही चिरपरिचित गीत गाते रहे। फिर वे अपनी शैया पर चले गये। उनके हाथ में जपमाला विद्यमान थी। रात में नौ बजे उनके मुख से दो बार कराह निकली। फिर उनका

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मस्तक तकिये पर एक ओर को लुढ़क गया। बस योगीश्वर विवेकानंद अनंत निद्रा में सो गये। अमावस्या के अंधकार में जगन्माता ने अपने रणक्लांत पुत्र को अपनी गोद में उठा लिया।

(शोकसूचक गंभीर संगीत और 'चल मन निज निकेतने' का गान, जो दूर होते-होते बुझ जाता है।)

-श्री रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित रेडियो-रूपक "हे राम" से उद्धृत।

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामी विवेकानन्द : एक संक्षिप्त कालानुक्रमिकी

वर्ष	तिथि	घटना
१८६३	१२ जनवरी	कलकत्ते में जन्म
१८८१	नवम्बर	श्रीरामकृष्णदेव से प्रथम मुलाकात
१८८२	पूर्वार्ध	श्रीरामकृष्ण देव से अंतरंगता
१८८३		बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण
१८८४		पिता की मृत्यु
१८८६	१६ अगस्त	श्रीरामकृष्णदेव की महासमाधि
	उत्तरार्द्ध	वराहनगर मठ की स्थापना
	'क्रिसमस ईव'	आँटपुर में संन्यास का अनौपचारिक व्रत लेना
१८८८	पूर्वार्द्ध	वाराणसी की तीर्थयात्रा
	जून-नवम्बर	उत्तरी भारत के तीर्थस्थलों की दूसरी यात्रा
१८८८	नवम्बर से	
१८८९	दिसम्बर	वराहनगर मठ में
१८९०		परिव्राजक के रूप में
१८९२	दिसम्बर	कन्याकुमारी में
१८९३	३१ मई	अमेरिका को
	२५ जुलाई	वैनकुवर पहुँचे
	अगस्त के अंत में	अनिस्कम में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जॉन एच. राईट से भेंट
	११-२७ सितम्बर	शिकागो धर्म-सम्मेलन
	१२ नवम्बर से	
१८९४	अप्रैल	मध्य-पश्चिमी अमेरिका का दौरा
	१४ अप्रैल से	
१८९५	जून	पूर्वी तटों पर भाषणादि
	१८ जून से	
	७ अगस्त	सेंट लारेंस नदी के थाउसण्ड आइलेंड पार्क पर
	१७ अगस्त	यूरोप के लिए प्रस्थान
	अक्तूबर- नवम्बर	लंदन में
	६ दिसम्बर	वापस अमेरिका को
१८९६	अप्रैल के अंत में	लंदन की दूसरी यात्रा
	मई-जुलाई	लंदन में व्याख्यान
	२८ मई	लंदन में मैक्स मूलर से भेंट
	अगस्त-सितंबर	छः सप्ताह के लिए यूरोप में
	अक्तूबर-नवम्बर	लंदन में व्याख्यान
	३० दिसम्बर	नेपल्स से भारत को रवाना
१८९७	१५ जनवरी	कोलम्बो में आगमन
	२६ जनवरी	पांबन (भारत) आगमन
	६-१५ फरवरी	मद्रास में
	२१ फरवरी	कलकत्ता पहुँचे
	१ मई	कलकत्ते में रामकृष्ण मिशन की स्थापना
	मई (उत्तरार्ध)	उत्तरी भारत की यात्रा
१८९८	जनवरी	अल्मोड़ा अवस्थान के बाद उत्तरप्रदेश, पंजाब, राजस्थान होते हुए कलकत्ते को वापस
	मई	उत्तरी भारत की पुनर्यात्रा
	२ अगस्त	अमरनाथ (कश्मीर) में
	अक्तूबर	क्षीर भवानी में
	१८ अक्तूबर	वापस कलकत्ता
	९ दिसम्बर	बेलूड़ मठ की स्थापना
१८९९	१९ मार्च	मायावती में अद्वैत आश्रम की स्थापना
	२० जून	विदेश की दूसरी यात्रा
	३१ जुलाई	लंदन पहुँचे
	२६ अगस्त	न्यूयार्क आगमन
	अगस्त-नवम्बर	रिजले मेनर, न्यूयार्क में
	दिसम्बर से	
१९००	मई	कैलिफोर्निया में कार्य
	२० जुलाई	यूरोप के लिए रवाना
	अगस्त-अक्तूबर	पैरिस में ('धर्म का इतिहास' सम्मेलन)
	२५ अक्तूबर से नवंबर के अंत तक	वियेना, कास्टेंटीनोपल तथा काहिरा की यात्रा
	९ दिसम्बर	बेलूड़ मठ को वापस
१९०१	जनवरी	मायावती की यात्रा
	मार्च-मई	पूर्वी बंगाल तथा आसाम की यात्रा
१९०२	जनवरी-फरवरी	बोधगया तथा वाराणसी की यात्रा
	मार्च एवं तत्पश्चात्	बेलूड़ मठ में
	४ जुलाई	महासमाधि

- "विवेकानन्द : एक सचित्र जीवनी"
प्रकाशक: स्वामी मुमुक्षानन्द, अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम
मायावती, पिथौरागढ़, वर्ष १९९३

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Letter to Amiya Chakravarti

Vienna XVIII
Cottage Gasse 21
7 March 1935

Dear Professor Chakravarti,

After my arrival in Rome, the first person I heard of was you. Initially I was a little surprised to learn that you had come to Europe. I was glad that you presided over the conference of Indian students here.

I have met Dr. Selig and have had a discussion with him. I invited him to tea one day; I shall have an extensive discussion another day. I felt happy to have talked with him because there is depth in his thinking. He first wrote to me (enclosing your letter with it); thereafter one day I was introduced to him and met him at a meeting here. (Some days ago I spoke at a public meeting of the women's society here on 'India's Women.')

The comments that you have made about my book have made me happy beyond measure. M. Romain Rolland has also written a beautiful letter to me.

I was somewhat surprised that you left 'Santiniketan.' However, I think no tree can attain great heights under the shadow of another. At least that is what I feel when I see the

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

disciples of Mahatma Gandhi. That is why Swami Vivekananda did not keep his own disciples around himself for long. Let us leave it there.

How long will you be there? What is the subject of the book you are writing?

With my regards and affectionate greetings.

Yours sincerely,
Subhas Chandra Bose
Collected from:
-"Netaji collected works" : Vol.:8

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Raipur and Vivekananda

Naren felt a natural kinship with Nature, the bewitching beauties--the various sights and sounds of which very often awakened in him deep spiritual emotions and plunged him into trance. In 1877, when Naren was reading in the third class, his father went to Raipur in the Central Provinces, instructing the family to proceed to that place later under the guidance of his son Naren. It so happened that the party had to traverse a long distance for days together by bullock carts through dense jungles and over high hills. Naren was extremely delighted to enjoy the freedom of the open in the course of his long trek through the forest. The solemn silence of the surroundings, the melodious warblings of birds of variegated colours the soft beauty of the green foliage of trees and creepers begemmed with sweet scented flowers, the luxuriant verdure hiding the ugliness of the earth underneath-all combined to conjure up before the fervid imagination of the boy a realm of heavenly bliss rarely to be met with in this world of tears. One day; while passing through the Vindhya Hills where the lofty peaks shot up high overhead on either side, Naren all on a sudden noticed a vastly expanded bee-hive hanging with its millions of busy and buzzing inmates in a deep cleft in one of the hills. The very sight of such a big hive which was the product of centuries of indefatigable labour of these untiring and industrious battalions of bees reminded him of the immensity of the universe and the vastness of the power of the Almighty Creator and threw him Instantly into a

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

trance. So deep it was that he remained unconscious on the bullock cart for hours together. When he regained normal consciousness, he found that a long distance had been covered by this time. This was the first instance when his powerful imagination switched him off from outer world into the realm of the Unknown and kept him completely oblivious of what happened outside for such a long period.

There being no school at the time in Raipur, Naren was now altogether free from the obligation of learning the routine-lessons of a class. He thus got a golden opportunity to utilize this leisure in the study of standard books on different subjects. His father Viswanath also gave the boy complete freedom in this regard so that he might develop according to his own line of growth. Moreover, to stimulate the boy's intellectual curiosity and intensify his eagerness to enrich the stock of knowledge, he used to hold long discussions with him upon difficult topics which required precision and depth of thought. In this way, Naren's intellectual horizon was greatly widen the loving guidance of his learned father. Thus Narendranath had finished a good number of important books on history and mastered many standard works of the English and Bengali literature by the time he completed his school career.

- Collected from "Swami Vivekanand Centenary Memorial Volume"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Vivekananda : Influence on Subhash Chandra Bose

❑ B.K. Ahluwalia

It was at the Revenshaw School that Subhas passed through a spiritual crisis. It caused him immense suffering and acute mental conflict. About this period Bose has thus recorded in his Autobiography.

"I was at this time entering on one of the stormiest periods in my psychical life which was to last for five or six years. It was a period of acute mental conflict causing untold suffering and agony, which could not be shared by any friends and was not visible to any outsider. I had in some respects a touch of the abnormal in my mental make-up. Not only was I too much of an introvert, but I was in some respects precocious. The result was that at an age when I should have been tiring myself out on the football field, I was brooding over problems which should rather have been left to a more mature age. The mental conflict, as I view it from this distance, was a twofold one. Firstly there was the natural attraction of a worldly life and of worldly pursuits in general, against which my higher self was beginning to revolt. Secondly, there was the growth of self-consciousness, quite natural at that age, but which I considered unnatural and immoral and which I was struggling to suppress or transcend....

One day by sheer accident I stumbled upon what turned

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

out to be my greatest help in this crisis. A relative of mine, who was a new-comer to the town, was living next door and I had to visit him. Glancing over his books, I came across the works of Swami Vivekananda. I had hardly turned over a few pages when I realized that there was something which I had been longing for. I borrowed the books from him, brought them home, and devoured them. I was thrilled to the marrow of my bones. My headmaster had roused my aesthetic and moral sense-had given a new impetus to my life but he had not given me an ideal to which I could give my whole being. That Vivekananda gave me....

The religion that Vivekananda preached-including his conception of yoga-was based on a rational philosophy on the Vedanta and his conception of the Vedanta was not antagonistic to, but was based on, scientific principles. One of his missions in life was to bring about a reconciliation between science and religion, and this, he held, was possible through the Vedanta.

"For days, weeks, months, I poured over Vivekananda's works. His letters as well as his speeches from Colombo to Almora, replete as they were with practical advice to his countrymen, inspired me the most. From this study, I emerged with a vivid idea of the essence of his teachings. . .

"There followed a revolution within, and everything was turned upside down. It was of course, a long time before I could appreciate the full significance of his teachings, or the greatness of his personality."

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
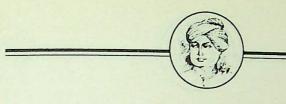
From Vivekananda, Bose turned gradually to his master Ramakrishna Paramhansa.

The burden of Ramakrishna's precepts was "renounce lust and gold. The twofold renunciation was for him the test of a man's fitness for spiritual life. The complete conquest of lust involved the sublimitation of the sex instinct whereby to a man every woman would appear as mother."

Bose was soon able to get together a group of friends who became interested in Ramakrishna and Vivekananda. Whenever they had a chance at school and outside, they would talk of nothing else but this topic.

Bose was questioned, warned in a friendly manner and ultimately rebuked. But all this was to no purpose". He wa rapidly changing, and was no longer the goody-goody boy. afraid of displeasing his parents.

Ramakrishna's example of renunciation and purity initiated a battle royal with all the forces of the lower self. And Vivekananda's ideal brought me into conflict with the existing family and social order. I was weak, the fight was a long-drawn one, in which success was not easy to obtain. Hence, tension and unhappiness with occasional fits of depression.

"It is difficult to say which aspect of the conflict was more painful-the external or the internal-. A stronger or less sensitive mind than mine would have come out successful more quickly,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

or suffered much less acutely than I did.But there was no help, I had to go through what was in store for me...

"The only thing that now mattered to me was mental and spiritual exercise. I had no proper guide at the time, and turned to books for such help as they could afford me. Only later did I realise that not all of these were written by reliable or experienced men. There were books on Bramhacharya, or sex control, which were readily made use of. Then there were books on meditation, which were greedily devoured. Books on yoga, and especially hatha-yoga, were eagerly hunted after and utilized. And over and above this, all kinds of experiments were made. A faithful narration of all that I went through would suffice to make a first-class entertainment. Small wonder that some thought that I was on the verge of lunacy. . . .

"Whatever may be the ultimate truth about such notions as God, soul, and religion from the purely pragmatic point of view, I may say that I was greatly benefited by early interest in religion and my dabbling in yoga. I learnt to take life seriously."

Bose passed through a period of untold mental suffering and agony, which he did not share with any friend. But he later recorded in his autobiography -An Indian Pilgrim.

"In actual practice the difficulty was that the more I concentrated on the suppression or sublimation of the sex instinct, the stronger it seemed to become at least in the initial stages. Certain psychophysical exercises including certain forms

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

of meditation, were helpful in acquiring sex control. Though I gradually made progress the degree of purity which Ramakrishna had insisted on seemed impossible to reach. I persisted in spite of temporary fits of depression and remorse, little knowing at the time how natural the sex instinct was to the human mind. As I desired to continue the struggle for the attainment of perfect purity, it followed that I had to visualize the future in terms of a celibate life". This mental conflict of Bose was a twofold one.

The teachings of Swami Vivekananda helped Subhas to resolve his mental crisis. He read Vivekananda's books, which provided a satisfactory solution to his problems. The essence of Vivekananda's teaching was: "Seek your own salvation in the welfare of humanity". Bose was very much fascinated by his teachings and tried to inculcate it among his circle of friends. The mystic strain which remained with Bose, throughout his life and his craving for higher values and spiritual uplift were reflected in his letters to his mother in 1912-13. In one of the letters Bose wrote, "Without realisation and divine revelation life is worthless. Worship, meditation, prayer, contemplation, etc. that man engages in have only one aim-realisation of the Divine. If this purpose is not fulfilled all else is in vain. One who has tasted this heavenly bliss once will never turn to the sinful material world."

Subhas felt that his spiritual quest would be more rapidly fulfilled if he could find a Guru of the real Indian type. He met a ninety-year-old sanyasi and was attracted to him. His precepts he diligently practised, but still he could not get mental peace.

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

Subhas therefore again turned to Vivekananda's gospel of social service. He started visiting the adjoining villages along with his friends to help the villagers in whatever way they could.

Since Bose had started devoting much of his time to these activities, his parents and teachers were worried about his future. It was, a pleasant surprise for them, when in march 1913 Subhas not only passed the matriculation examination but also stood second in the Calcutta University. He joined the Presidency College which was considered at that time a top institution of higher education in Calcutta. But the Government suspected that the hostels of the Presidency College harboured young revolutionaries. Subhas however was too busy in his spiritual quest to have any links with revolutionaries. In pursuit of his spiritual quest, Subhas one day secretly left his home. This worried his family members but all their search proved futile. When his parents had given up all hope of seeing him again, Subhas returned. During this period of two months, Subhas was thoroughly disillusioned by the so-called holy men whom he met in his wanderings.

Collected from:
- "Netaji and Gandhiji"

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

THE INDIVIDUAL, THE NATION AND THE IDEAL

Speech at the Hooghly District Student's Conference in on Sunday, 22 July 1929

Mr. Chairman of the Reception Committee and students,

You know best why you have called me to this conference of students to-day. But so far as I am concerned, the reason why I have felt the, inclination or rather the courage to come to this assembly today, is that I still consider myself a student like yourselves. I study the "Vedas of Life" carefully and am at the present moment engaged in gathering the knowledge that comes to a man through the hard knocks of experience of the real life.

Every single nation or individual has got a special trait or ideal of his own. He shapes his life in accordance with that ideal. It becomes the sole object of life to realize that ideal as fully as possible. And minus that ideal his life becomes absolutely meaningless and unnecessary. Just as in the case of the individual the pursuit of an ideal continues through long years, so also in the case of the nation it works from generation to generation. That is why the wise people say that an ideal is not a lifeless and motionless entity. It has got speed, locomotion and lifegiving power.

We may not always succeed in catching a glimpse of the ideal that has been trying to unfold itself in our society for the

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

last one hundred years ; out he who is thoughtful and endowed with real insight can certainly detect the general trend of this ideal behind all visible Phenomena, like the steady subterranean flow of the river Falgoo. And it is this ideal which constitutes the idea of the age. When a man attains a complete perception of the ideal, he can easily find out his destination and his guide on the way. But because this perception does not always come to us, we pretty often run after mistaken ideals and follow false prophets. Students, if you really want to shape your lives to some purpose, then protect yourself by all means from the influence of false guides and mistaken ideals and make your own settled choice of your own ideal in life.

The ideal that used to enthuse the student community. of Bengal, say, fifteen years ago, was the ideal of Swami Vivekananda. Under the hypnotic spell of that glorious ideal, the Bengalee youth went in with grim determination for a life of purity and spiritual powers freed from all taint of selfishness and shabbiness. At the root of the construction of the society and the nation lies the unfoldment of individuality. That is why Swami Vivekananda was never tired of repeating that "man-making" was his mission.

When a new era was ushered in our country before the age of Vivekananda, Raja Ram Mohan Roy was our guide. From the age of Ram Mohan onwards the desire for freedom in India has been manifesting itself through all-sorts of movements, and when in the last decade of the nineteenth century and the first of

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

the twentieth, the soulstirring message of Swami Vivekananda-"Freedom, freedom is the song of the soul,"-burst the locked gates of the Swadeshi's heart and came forth in a flood of irresistible might, the whole country caught it up and nearly went mad.

It was Swami Vivekananda who had on the one hand, boldly asked his fellowmen to shed all sorts of fetters and be 'men' in the truest sense of the term; and, on the other hand, laid the foundation of true nationalism in India by preaching the essential unity of all religions and sects. But the image of freedom, whole and entire that we come across in Vivekananda, had not yet been reflected in the realm of politics in his age. It was in the mouth of Aurobindo that we heard the message of political freedom for the first time. And when Aurobindo wrote in the columns of his "Bandemataram"-"we want complete autonomy free from British control"-the freedom-loving Bengalee youth could feel that he had at last got the man of his heart.

Having thus received the impetus to complete independence, the Bengalee people have been forging ahead, making light of all obstacles and stumbling-blocks on the way. And when we come down to the year 1921, along with the message of non-co-operation we get another thing from the lips of Mahatma Gandhi : "There can be no Swaraj without the masses, and until we can rouse a hunger for freedom amongst them." This potent message became clearer still in the life of Deshbandhu Chittaranjan'. In the course of his Lahore Speech,

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

he very clearly declared that the kind of Swaraj that he wanted was not for the few but for all, for the masses in general. The ideal of "Swaraj for the masses" was put up by him before his countrymen at the All India Labour Conference.

We get another message exemplified in the life of Deshbandhu. It is this, the life of man-that of nation as well as of an individual-that is a piece of immutable truth. It is not possible to divide this life into two or more water-tight compartments. When the life of a man quickens into consciousness, we get ample proofs of this new awakening from all sides, and pulsation of a new life are felt all round. The world-and so the life of man-is full of diversity. If we kill this diversity, there will be no fulfilment of life; we shall rather bring ourselves nearer to death or destruction by so doing. That is why the un-foldment of both the individual and the nation has to be achieved through this diversity, through the "many".

The unity which Ramkrishna and Vivekananda established between "the one" and "the many" in the spiritual world, Deshbandhu achieved or at least tried to achieve in the life of the nation and in the political sphere. In one word, he firmly believed in a "federation of cultures", and in the realm of politics, he liked a federal state for India better than a centralized state.

The all-round development and self-fulffiment in which Deshbandhu so firmly believed, is the ideal of the present age. If we want to make this "Sadhana' fruitful, we shall fist of all have

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

to visualize an unbroken image of independence in our minds. Unless a man can realize his ideal wholly and completely; he can never hope to come out victorious in the battle of life. That is why it has become so necessary to tell all India, and specially the youth of the country that in the free India of which we are dreaming, everybody is free-free from all kinds of shackles, social, political and economic.

Today I have come to tell this one thing to the student community here-that the 'idea' of the age in which you are born is the attainment of complete and all-round freedom. Our people want to live, grow and have their being in a free country and in the midst of a free atmosphere. We need not take fright at the idea of independence. Our claim to independence is nothing but the right to make mistakes. So let us not get upset by a nightmare vision of chaos which may or may not follow the attainment of political salvation by us. Let us have an abiding faith in ourselves and go forward to snatch our birthright from unwilling hands.

In our country three large communities are lying absolutely dormant; these are the women, the so-called depressed classes and the labouring masses. Let us go to them and say: "You also are human beings and shall obtain the fullest rights of men. So arise, awake, shed your attitude of inactivity and snatch your legitimate rights".

You students and youngmen of Bengal, be you all the

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

votaries of complete independence. You are the inheritors of the future India. It is therefore, up to you to take upon yourselves the task of reawakening and galvanizing the whole nation. Go out in your thousands into the remote villages and corners of Bengal and preach the life-giving message of equality and freedom to all and sundry. The picture of freedom which I have just held before your eyes must, in its turn, be held by you before the whole country. Go forward in the right spirit and your victory is absolutely certain. Let your 'sadhana' be fruitful in good results India be free again-and let your lives be crowned with glory and renown.

"Bande Mataram"

Subhash Chandra Bose
Collected from:
-"Netaji's collected works" vol.:6

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

स्वामीजी की हस्तलिपि

Kali the mother

The stars are blotted out,
the clouds are covering clouds,
It is darkness vibrant sonant;
In the roaring whirling wind
are the souls of millions lunatics;
Just loosed from prison house,
wrenching trees by the roots,
Sweeping all from the path.
The sea has joined the fray,
and swirls up mountain-waves.
to reach the pitchy sky.
The flash of lurid light
reveals on every side
a thousand thousand shades
of death begrimed and black,
Scattering plagues and sorrows,
dancing mad with joy.
Come mother come.

For terror is thy name,
Death is in thy breath,
and every shaking step,
destroys a world for e'er.
Thou "time" the all destroyer.
Then come O mother come

time = Kali(?)

Who dares misery love.
and hug the form of death,
Enjoy destructions dance,
To him the mother comes.

महात्मा गांधी १२५वाँ जन्मवर्ष समारोह समिति, मध्यप्रदेश
संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-४६२ ००३
फोन : ५७४४५८ (का.) ५५७०४० (नि.)
फैक्स : ०७५५-५७५७३३